सुभाषितानि
आशुतोष
बंसल

संस्कृताय जीवनम्

संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः। भाषेयं देववाणी। वागियं परमपवित्रा। अस्याः ज्ञानायावगमनाय च जना ईहन्ते। अवबुध्य स्वयं समुन्नता भवामः- इति भावनया तुष्यन्ति। आत्मनः सन्तुष्टिरियं पुरुषं धार्मिके प्रगतिपथे नयति। संस्कृतं संस्कृतेर्मूलम्।

यथा चाचार्यः कपिलदेव द्विवेदी कथयति--"सुविदितमेतत् समेषामपि शेमुषीमतां यद् भारतीया-संस्कृतिः न अधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा। संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीविनः। संस्कृतिर्हि स्वान्तस्य संस्कर्त्री, सद्भावानां भावयित्री, गुणगणस्य ग्राहयित्री, धैर्यस्य धारयित्री, दमस्य दात्री सदाचारस्य सञ्चारयित्री, दुर्गुणगणस्य दमयित्री, अविद्यान्धतमसस्य अपनोदयित्री, आत्मावबोधस्य अवगमयित्री, सुखस्य सीधयित्री, शान्तेः सन्धात्री च काचिदनुत्तमा शक्तिः। सेयं संस्कृतिः अजस्रं रक्षणीया, पालनीया, परिवर्धनीयेति भारतीय-संस्कृतेः समुद्धाराय अवबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम्। समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्य अवतिष्ठते।" इति।

अतः संस्कृतभाषाज्ञानाय, शिक्षणाय, प्रचाराय, प्रसाराय च केचन प्रयत्नाः क्रियन्ते स्वस्वप्रतिभाः, अभिरुचीत्यादिकमनुसृत्य तज्ज्ञैः। तादृशः कश्चन प्रयत्नः मया क्रियमाणः भवतां संस्कृतानुरागिणां पुरतः सप्रणामं प्रस्तूयते।"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः", "विद्या ददाति विनयम्", "अनभ्यासे विषं विद्या", "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः", "उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि, न मनोरथैः", "पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।" ---एतानि सुप्रसिद्धानि वाक्यानि कुत्रचित् श्रुतानीव भासन्ते किल। एतानि हितोपदेशग्रन्थे सन्ति। भारतीय-सनातन-धर्मस्यांशानाम् उद्घोषणं कुर्वन्नयं ग्रन्थः जनसामान्ये प्रख्यातः।

संस्कृतशिक्षणे प्राथमिकदशायां हितोपदेश-श्लोकान् कण्ठस्थीकारयन्ति शिक्षकाः विद्यार्थीन्। धार्मिकजीवनाय, अमूल्यज्ञानसम्पन्नतायै च श्लोकानामेतेषामुपयोगितां मनसि निधाय, टिप्पणीसहितं प्रतिपदार्थतात्पर्य युक्तं सरलं व्याख्यानमत्र प्रस्तूयते।

व्याख्यानं सर्वं किञ्चित्प्रयोजनमुद्दिश्य संस्कृतेनैव कृतम्। ये जना संस्कृतभारत्या संस्कृतं शिक्षित्वा आगच्छन्ति, तेषाम् अवगतिः संस्कृतमूलग्रन्थानां पठनाय नालम्। हिन्दी-आङ्ग्लेय्यादि-भाषा-साहाय्यं अपेक्ष्यते तैः। अतस्तादृशाना मनुवादं विनैव संस्कृते चिन्तनं वर्धतामिति सङ्कल्पं कृत्वा प्रयासोयं आरब्धः।

अत्र रचनाप्रणाली एवम्--- सर्वप्रथमं मूलश्लोकः दीयते। तदनन्तरं पदविभागः-- यत्र पदानि सर्वाणि विसन्धीकृत्य प्रदर्श्यन्ते। तत अन्वयः-- यत्र भारतीयभाषाणां वाक्यनिर्मितिमनुसृत्य श्लोकस्थशब्दानां अनुक्रमः योज्यते। तत्पश्चात् प्रतिपदार्थः-- यत्र श्लोके स्थितानां कठिनशब्दानां सामान्यार्थः दीयते। एते अर्थाः श्रीमतः गुरुप्रसादशास्त्रिणः 'अभिनवराजरक्ष्मी' इति संस्कृतटीकातः निर्मिताः। (https://archive.org/details/Hitopadesha-OCR) यत्र व्याख्याकृता न कोपि अर्थः दत्तः, तत्र मया यथाशक्ति अर्थाः कृताः। तस्मात् परं तात्पर्यं भवति-- यत्र संस्कृतवाक्येन श्लोकभावः प्रकटीकृतः। तात्पर्यं तु स्वतन्त्रतया मया कृतम्। कार्यमिदं न सम्पूर्णम्। प्रतिदिनं एकैकं श्लोकं एवंरूपेण निर्मीय प्रकट्यते अत्र। अद्यावधि यावन्तः कृताः तावन्तः प्रदर्शिताः। अग्रेपि कार्यमिदं प्रचलिष्यति।

अत्र यत्रकुत्रचित् सन्ति चेद्दोषाः सूच्या इति नम्रं निवेदनम्। यत्किञ्चिद्वक्तव्यं, प्रयत्नस्यास्य संवर्धनाय, संशोधनाय च प्रयोजनकरं तत् सर्वं विमर्शनरूपेण वदन्तु इति प्रार्थना।मदीयः प्रयत्नः संस्कृताध्यायिभ्यः यदि किञ्चिदपि उपयोगाय, प्रयोजनसिद्धये वा संसेत्स्यति, तर्हि सफलो जातः यावान् समयः अत्र यापित इति हर्षमनुभविष्यामि। अनुगृह्णन्तु। नमांसि।

1.	अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कर्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥	जो कार्य निषिद्ध है, उसे प्राण कण्ठगत (मृत्यु संकट उपस्थित होने की स्थिति) पर भी नहीं करना चाहिये। जो कर्तव्य है, उसे अपने प्राण की परवाह न करते हुये भी अवश्य करना चाहिये।
2.	अकस्माद्युवती वृद्धं केशेष्वाकृष्य चुम्बति । पतिं निर्दयमालिङ्ग्य हेतुरत्र भविष्यति ॥	वृद्धपति की युवा स्त्री सहसा अपने वृद्धपति के केशों को पकड़कर उसका गाढ़ आलिङ्गन कर उसके मुख का चुम्बन करती है, तो उसमें ज़रूर कुछ कारण होगा ॥
3.	अकाले कृत्यमारब्धं कर्तुर्नार्थाय कल्पते। तदेव काले आरब्धं महतेऽर्थाय कल्पते॥	असमय में शुरू किया गया कार्य करनेवाले के लिए लाभदायक नही होता और वही उपयुक्त समय पर कार्य आरम्भ किया जाय तो वह कार्य महान अर्थ का साधक होता है।
4.	अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः। मया सन्तुष्टमानसः सर्वाः सुखमया दिशाः॥	कुछ इच्छा न रखने वाले, समभाव-समता से युक्त, नियंत्रित, शांत, समान चित्त वाले, मन से संतुष्ट मनुष्य के लिए सभी अवस्थाएँ सुखमय हैं।
5.	अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः । हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।	विनम्रता बदनामी को दुर करती है, पौरूष या पराक्रम अनर्थ को दुर करता है, क्षमा क्रोध को दुर करता है और अच्छा आचरण बुरी आदतों को दुर करता है।
6.	अक्षरद्वयम् अभ्यस्तं नास्ति नास्ति इति यत् पुरा। तद् इदं देहि देहि इति विपरीतम् उपस्थितम्॥	जो मनुष्य किसी गरीब द्वारा कुछ माँगने पर समर्थ होने पर इन्कार करता है वह भविष्य में स्वयं भी मांगने की स्थिति को प्राप्त होता है।

7.	**अग्निना सिच्यमानोऽपि वृक्षो वृद्धिं न चाप्नुयात्। तथा सत्यं विना धर्मः पुष्टिं नायाति कर्हिचित्।।**	आग से सींचे गए पेड़ कभी बड़े नहीं होते। उसी प्रकार सत्य के बिना धर्म की स्थापना संभव नहीं है।
8.	**अग्निशेषमृणशेषं शत्रुशेषं तथैव च । पुनः पुनः प्रवर्धेत तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥**	यदि कोई आग, ऋण, या शत्रु अल्प मात्रा अथवा न्यूनतम सीमा तक भी अस्तित्व में बचा रहेगा तो बार बार बढ़ेगा ; अतः इन्हें थोड़ा सा भी बचा नही रहने देना चाहिए । इन तीनों को सम्पूर्ण रूप से समाप्त ही कर डालना चाहिए ।
9.	**अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्। वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥**	अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले धीर व्यक्ति के लिए यह पृथ्वी एक बगिया के समान, समुद्र एक नहर के समान, पाताल लोक एक मनोरंजन स्थल के समान और सुमेरु पर्वत एक चींटी के घर के समान होता है । अतः मनुष्य को दृढ़प्रतिज्ञ एवं धीर-गम्भीर होना चाहिए।
10.	**अजराऽमरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्। गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।**	बुद्धिमान व्यक्ति को अपने को वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित समझकर ज्ञान और धन अर्जित करना चाहिए और जैसे मृत्यु उसके सिर पर सवार हो, उसे धर्म का पालन करना चाहिए।
11.	**अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः। सकृद् दुखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे।।**	या तो बच्चा पैदा ही नहीं हुआ, या एक ही समय में पैदा हुआ और मर गया, और मूर्ख है क्योंकि जब वे मर जाते हैं
12.	**अति सर्वत्र वर्जयेत्।**	अधिकता सभी जगह बुरी होती है।

13.	**अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः । ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रंजयति ।**	एक अज्ञानी व्यक्ति को किसी विषय के विशेषज्ञ विद्वान को संतुष्ट करना भी सरल होता है	परन्तु विपरीतार्थग्राही और ज्ञानशून्य व्यक्ति को तो स्वयं सृष्टि के रचयिता भी संतुष्टनहीं कर सकते हैं
14.	**अतितृष्णा न कर्तव्या तृष्णां नैव परित्यजेत् । शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम् ॥**	अधिक इच्छाएं नहीं करनी चाहिए पर इच्छाओं का सर्वथा त्याग भी नहीं करना चाहिए। अपने कमाये हुए धन का धीरे-धीरे उपभोग करना चाहिये॥
15.	**अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥**	जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, तो अतिथि उस गृहस्थ को अपना पाप देकर, उसका पुण्य लेकर चला जाता है ।
16.	**अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनात् अनादरो भवति। मलये भिल्ला पुरन्ध्री चन्दनतरुकाष्ठमं इन्धनं कुरुते॥**	अतिपरिचय (बहुत अधिक नजदीकी) अवज्ञा और किसी के घर बार बार जाना अनादर का कारण बन जाता है जैसे कि मलय पर्वत की भिल्लनी चंदन के लकड़ी को ईंधन के रूप में जला देती है।
17.	**अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्। नीच प्रसङ्गः कुलहीन सेवा चिह्नानि देहे नरक स्थितानाम्॥**	अति क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, आत्मीय जनोंसे वैर, नीचोंका सङ्ग और नीचकी सेवा-ये नरकमें रहनेवालोंके लक्षण हैं ॥
18.	**अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे । मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत् कुतः सुखम् ॥**	जब विधाता प्रतिकूल हो और जब सब यत्न भी निष्फल हो जाए, तो निर्धन मनस्वी मनुष्य के लिये देश छोड़कर अन्यत्र कहीं वनमें चला जाना चाहिए ॥

19.	**अदृष्टिदानं कृतपूर्वनाशनम् अमाननं दुश्चरितानु कीर्तनम् । कथाप्रसङ्गेन च नामविस्मृति-र्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ॥**	असन्तुष्ट होकर देखना, पूर्वकृत कार्यों (उपकारों) को भूल जाना, सत्कार न करना, दोषों को प्रकट करना, अवसर (मौके) पर नाम तक भी भूल जाना, वे सब विरक्त मनुष्य के लक्षण है ॥
20.	**अधमाः धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः। उत्तमाः मामिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥**	निम्न वर्ग का व्यक्ति केवल धन की इच्छा रखता है, मध्यम वर्ग का व्यक्ति धन और मान दोनों की ही इच्छा रखता है और उत्तम वर्ग का व्यक्ति केवल मान-सम्मान की इच्छा रखता है। मान-सम्मान का धन से अधिक महत्व होता है।
21.	**अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमंस्था स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि, अभिनव मदलेखाश्याम गण्डस्थलानां न भवति बिसतन्तुवरिणं वारणानाम् ॥**	किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को कभी भी नहीं आंका जाना चाहिए क्योंकि भौतिक संसार की भौतिक संपत्ति उसके लिए घास की तरह है। शराबी हाथी को कमल की पंखुड़ियों से नियंत्रित करना असंभव है। उसी प्रकार धन से बुद्धिमान को भी नियंत्रित करना असंभव है।
22.	**अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्। विषं गोष्ठी दरिद्रस्य भोजनान्ते जलं विषम्॥**	बिना अभ्यास किये पढ़ी हुई विद्या, बिना पचे ही किया हुआ भोजन, दरिद्रके लिये धनिकों की सभा और भोजन समाप्तिके समय जल पीना विषके समान हैं ॥
23.	**अनादरो विलम्बश्च वै मुख्यम निष्ठुर वचनम । पश्चतपश्च पञ्चापि दानस्य दूषणानि च ।**	अपमान करके दान देना, विलंब से देना, मुख फेर के देना, कठोर वचन बोलना और देने के बाद पश्चाताप करना- ये पांच क्रियाएं दान को दूषित करती हैं।

24.	**अनारम्भो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्।** **प्रारब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥**	आलसी लोगों की बुद्धि के दो लक्षण होते हैं - प्रथम कार्य को आरम्भ ही नहीं करना और द्वितीय भाग्य के भरोसे बैठे रहना।
25.	**अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहुभाषते ।** **अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ।।**	जो व्यक्ति बिना बुलाए किसी के यहाँ जाता है, बिना पूछे बोलता है और अविश्वासीयों पर विश्वास कर लेता है, उसे मुर्ख कहा गया है।
26.	**अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा ।** **यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ॥**	जहाँ अमंगल की आशंका होती है, वहाँ जाने से व्यक्ति को परहेज करना चाहिए। लाभ वहीं होता है जहाँ अनुकूल परिवेश होता है। क्योंकि विषयुक्त अमृत पीने से भी मृत्यु प्राप्त होती है।
27.	**अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।** **जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥** **अथर्ववेद ३**	पुत्र पिता के व्रत का पालन करने वाला हो तथा माता का आज्ञाकारी हो । पत्नी अपने पति से शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलने वाली हो ॥
28.	**अनेकशास्त्रं बहु वेदितव्यम् अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।यत्सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥**	कई शास्त्र (ज्ञान/वत्सलन) हैं और ज्ञान की भरपूरता है। लेकिन हमारे पास सीमित समय और बहुत से बाधाएँ हैं। जैसे एक हंस दूध और पानी के मिश्रण से दूध निकालता है, वैसे ही विस्तृत अध्ययन करने के बजाय शास्त्रों की सार्थकता का अध्ययन करना चाहिए ।
29.	**अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।** **सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।।**	जो अनेक शंकाओं को दूर करता है, भूत-भविष्य और परोक्ष को प्रत्यक्ष दिखाता है, जिसके पास शास्त्रों की दिव्य दृष्टि नहीं है, वास्तव में अंधा है।

30.	**अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम् ।** **तस्मात्सन्तोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः ॥**	तृष्णा अनंत है, और संतोष परम् सुख है । इस लिए विद्वज्जन संतोष को ही इस संसार में श्रेष्ठ समझते हैं ।
31.	**अन्नदाता भयत्राता विद्यादाता तथैव च।** **जनिता चोपनेता च पञ्चैते पितरः स्मृताः॥**	अन्न देनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्या पढ़ानेवाला, जन्म देनेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला-ये पाँच पिता कहे जाते हैं ।
32.	**अन्नदानं परं दानं विद्यादानमतः परम्।** **अन्नेन क्षणिका तृप्तिः यावज्जीवं च विद्यया॥**	अन्न का दान परम दान है और विद्या का दान भी परम दान दान है किन्तु दान में अन्न प्राप्त करने वाली कुछ क्षणों के लिए ही तृप्ति प्राप्त होती है जबकि दान में विद्या प्राप्त करने वाला (अपनी विद्या से आजीविका कमा कर) जीवनपर्यन्त तृप्ति प्राप्त करता है।
33.	**अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत् स्वच्छान्तरात्मनः ।** **प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ॥**	शुद्धहृदय वाले सज्जन की सहृदयता तो कुछ और ही प्रकार की होती है और कुटिल हृदय धूर्त की बोलचाल कुछ और ही तरह की दोती है।
34.	**अन्यायोपार्जितं वित्तं दस वर्षाणि तिष्ठति।** **प्राप्ते चैकादशेवर्षे समूलं तद् विनश्यति।।**	गलत तरीके से और अन्याय करके कमाया हुआ धन 10 वर्षों तक ही संचित किया हुआ रह सकता है। लेकिन वह धन अपने मूलधन सहित पूरा ग्यारहवें वर्ष नष्ट हो जाता है।
35.	**अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।** **स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्यध्वंसो हि मूर्खता॥**	अपमानको आगे कर और सम्मानकी ओर दृष्टि न देकर बुद्धिमान्को अपना कार्य-साधन करना चाहिये; क्योंकि काम बिगाड़ना मूर्खता है
36.	**अपराधो न मेऽस्तीति नैतद् विश्वासकारणम् ।** **विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥**	मेरा कोई अपराध नहीं है- यह कोई कारण नहीं है आश्वासन का। गुणवान व्यक्तियों को भी क्रूरजनों से भय होता ही है॥

37.	**अपि मृद्धा गिरा लभ्यः सदा जागर्त्यतन्द्रितः । नास्ति धर्मसमो भृत्यः किंचिदुक्तस्तु धावति ॥ महा**सुभाषित**संग्रह**	धर्म के समान कोई भी सेवक नहीं है, जो धीरे से पुकारने पर आ जाता है, आलस्य के बिना सदैव जाग्रत रहता है, और छोटे से भाषण से अपने कार्य(संदेश) को बढ़ाता है।
38.	**अपि मेरुसमं प्राज्ञमपि शुरमपि स्थिरम्। तृणीकरोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम्।।**	भले ही कोई व्यक्ति मेरु पर्वत की तरह स्थिर, चतुर, बहादुर दिमाग का हो लालच उसे पल भर में घास की तरह खत्म कर सकता है।
39.	**अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च । मू र्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता ॥**	जिसको लडका नहीं है उसका, तथा जिसके सच्चा मित्र नहीं है उसका तो घर ही सूना है । और मूर्ख के लिए सब दिशायें ही सूनी हैं
40.	**अपूर्व कोपि कोशोयं विद्यते तव भारति। व्ययतो वृद्धमायाति क्षयमायाति संचयात्॥**	हे माता सरस्वती! आपका कोश (विद्या) बहुत ही अपूर्व है जिसे खर्च करने पर बढ़ते जाता है और संचय करने पर घटने लगता है।
41.	**अबन्धुर्बन्धुतामेति नैकट्याभ्यासयोगतः। यात्यनभ्यासतो दूरात्स्नेहो बन्धुषु तानवम्।।**	बार बार मिलने से अपरिचित भी मित्र बन जाते हैं। दूरी के कारण न मिल पाने से बन्धुओं में स्नेह कम हो जाता है।
42.	**अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। तस्यापि सर्वभूतेभ्यो नाभयं विद्यते क्वचित्॥**	जो मुनि सब प्राणियों को अभयदान देकर विचरता है, उसे समस्त प्राणियों में किसी से भी कहीं भय नहीं होता ।
43.	**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥**	विनम्र और नित्य अनुभवियों की सेवा करने वाले में चार गुणों का विकास होता है - आयु, विद्या, यश और बल ।
44.	**अभ्दिः गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुध्दिर्ज्ञाम्परानेन शुध्यति॥ - manusmriti**	शरीर के अंग जल से शुद्ध होते हैं । मन सत्य से शुद्ध होता हैं । आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता हैं और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती हैं

45.	**अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहप्रतिष्ठितम्।** **मोहादापद्यते मृत्युः सत्येनापद्यतेऽमृतम्॥**	अमरता और मृत्यु दोनों ही मानव शरीर में निवास करती हैं। मोह से पुनर्जन्म-मृत्यु प्राप्त होती है और सत्य से मोक्ष-अमरत्व।
46.	**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।** **उदारचरितानां तु वसुधैवकुटम्बकम्।।**	यह मेरा है, यह उसके विचार हैं जो केवल संकीर्ण दिमाग वाले लोग सोचते हैं। व्यापक विचारोंवाले लोगों की दृष्टि से वसुधा परिवार है।
47.	**अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।** **छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोप संहरते द्रुमः।।**	घर में आए शत्रु का भी उचित आतिथ्य सत्कार करना चाहिए। वृक्ष भी काटने वाले पर छाया नहीं हटाता , काटने पर भी छाया देता है।
48.	**अर्थनाशं मनस्तापं गहे दुश्चरितानि च ।** **वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥**	बुद्धिमान् मनुष्य धनको नाश, अपने मन को सताप घर की बुराई, ठगा जाना और अपने अपमान को किसी के समक्ष प्रकाशित न करे
49.	**अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या** **प्रियवादिनी च ।वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च** **विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥**	हे राजन् । नित्य धनागम, स्वस्थता प्रेम करनेवाली सत्य बोलने वाली स्त्री, आज्ञापालक पुत्र तथा धनोपार्जन करने वाली विद्या ये मनुष्य लोक के छः सुख है
50.	**अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा। विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला॥**	स्वार्थियों को न कोई गुरु होता है न बन्धु, कामातुरोंको न भय रहता है न लज्जा, विद्यातुरों को न सुख रहता है न नींद, क्षुधातुरोंके लिये न स्वाद होता है न भोजन करनेका कोई नियत समय ही ॥
51.	**अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।** **क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥**	धनहीन हो जाने से अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन मनुष्य के सभी काम उसी प्रकार बिगड़े जाते हैं, जैसे गरमी में सब छोटी छोटी नदियाँ सूख जाती है ॥

52.	**अलसस्य कुतः विद्या, अविद्यस्य कुतः धनम्। अधनस्य कुतः मित्रम्, मित्रस्य कुतः सुखम् ॥**	आलसी इन्सान को विद्या कहाँ ? विद्याविहीन को धन कहाँ ? धनविहीन को मित्र कहाँ ? और मित्रविहीन को सुख कहाँ ?
53.	**अल्पस्य हेतोः बहु हातुमिच्छन, विचार मूढा प्रतिभासि में त्वम।**	मनुष्य को जो उसके पास है, उससे संतुष्ट रहना चाहिये और तरक्की हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये।
54.	**अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका। तृणैर्गुणत्वमापन्नैः बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ हितोपदेशः, मित्रलाभः**	छोटी-छोटी वस्तुएँ जब मिल जाती हैं, तो उनसे बड़े-बड़े काम सिद्ध हो जाते हैं। जैसे रस्सी तिनको से बनती है और उससे शक्तिशाली हाथी भी बांधे जाते हैं।
55.	**अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया। दुर्भगाभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना।।**	जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ और मन अपने वश में नही हो, उसकी सारी क्रियाएँ हाथी के स्नान के समान हैं। जिस प्रकार बंध्या स्त्री का पालन पोषण बेकार है, उसी प्रकार क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है।
56.	**अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि । नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥**	ये घटनाएँ निश्चित रूप से होती हैं, वे न केवल सामान्य लोगों के, बल्कि महापुरुषों के जीवन में भी घटित होती हैं। शिव तथा विष्णु जगद् रक्षक हैं, फिर भी शिव का दिगम्बरत्व, विष्णु की शय्या शेष है
57.	**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।**	किए गए अच्छे या बुरे कर्म अवश्य ही भुगतने के लिए पढ़े जाते हैं, करोड़ों कल्पों के बीत जाने के बाद भी कर्म बिना भोग के क्षय नहीं होता है।

58.	**अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि। प्रतिकुर्युर्न किं नूनं नलरामयुधिष्ठिराः।।**	अगर अच्छी और बुरी चीजों को होने से रोकने का कोई उपाय होता तो नल, राम और युधिष्ठिर जैसे चक्रवर्ती राजाओं ने वह उपाय क्यों नहीं किया होता।
59.	**अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गाः कथंचन। इति श्रीकृष्णस्यदासस्य वल्लभस्य हितं वचः। चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत्॥**	मुश्किल स्थितियों में केवल श्रीहरि ही मेरे हैं और मुझे किसी प्रकार मोह न हो। श्रीकृष्ण के दास वल्लभ के इन हितकारी वचनों को मन में धारण कर भक्त को निश्चिन्त होकर रहना चाहिए।
60.	**अश्वस्य भूषणं वेगो मत्तं स्याद गजभूषणम्। चातुर्यं भूषणं नार्या उद्योगो नरभूषणम्।।**	गति घोड़े का आभूषण है, चाल हाथी का आभूषण है, चातुर्य स्त्री का आभूषण है, और उद्योग में संलग्न होना पुरुष का आभूषण है।
61.	**अष्टादस पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।**	अठारह पुराणों में व्यास के दो वचन ही है। पहला परोपकार ही पुण्य है और दूसरा औरों को दुःख पहुंचाना पाप है।
62.	**अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयंति प्रज्ञा सुशीलत्वदमौ श्रुतं च। पराक्रमश्चबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च**	आठ गुण पुरुष को सुशोभित करते हैं - बुद्धि, सुन्दर चरित्र, आत्म-नियंत्रण, शास्त्र-अध्ययन, साहस, मितभाषिता, यथाशक्ति दान व कृतज्ञता।
63.	**असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय, प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥**	असंभव एक सुनहरे हिरण का जन्म होता है, फिर भी राम को लुभाया जाता है, विपत्तिकाल है, तो मनुष्यों की प्रतिभाएँ अस्पष्ट हो जाती हैं।

64.	**असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृन्मताः । साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्॥**	बुद्धिमान् एवं आपस में मित्रता रखने वाले व्यक्ति साधनविहीन तथा धन रहित होने पर कौए, कछुए, हरिण और चूहे के समान अपने कार्यों को सिद्ध कर लेते हैं ॥
65.	**असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम् । अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥**	जिसने धनिको के द्वार की सेवा नहीं की, जिसने विरह की व्यथा नहीं सही, और जिसने कहीं अपनी दीनता प्रगट नहीं की, उसी मनुष्य का जीवन धन्य हैं ॥
66.	**अस्ति चेदिश्वरः कश्चित फलरूप्यन्यकर्मणाम्। कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभर्हि सः।।**	यदि किसी ईश्वर को जीव को कर्म का शुभ या अशुभ फल देने वाला मान भी लिया जाए तो वह फल देने के समय कर्म करने वाले से भी अपेक्षा करता है, जो कर्म नहीं करता उसे फल नहीं देता। कार्य, इसलिए कार्य करना नितांत आवश्यक है।
67.	**अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च। अभावेऽप्यतिसन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले॥**	स्त्री, पुत्र और नौकर जिसके वशमें हैं और जो अभावमें भी अत्यन्त सन्तुष्ट रहता है, वह पृथ्वीपर भी रहकर स्वर्गका सुख भोगता है॥
68.	**अस्थिरं जीवितं लोके अस्थिरे धनयौवने। अस्थिराः पुत्रदाराश्च धर्मकीर्तिद्वयं स्थिरम्॥**	इस जगत में जीवन सदा नहीं रहने वाला है, धन और यौवन भी सदा न रहने वाले हैं, पुत्र और स्त्री भी सदा न रहने वाले हैं। केवल धर्म और कीर्ति ही सदा रहने वाले हैं।
69.	**अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्यमुपजायते । आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः॥**	राजकुल में गुणशून्य संतान कभी उत्पन्न नहीं होती। पद्मरागमणियों के उत्पत्ति स्थान में अयोग्य काँच का मणि कैसे उत्पन्न होता है।

70.	**अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।** **शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥** **महाभारतम्**	प्रतिदिन अनेक जीवात्माएं यमलोक जाती हैं अर्थात उनकी मृत्यु होती है, तब भी शेष अमर होने की इच्छा रखते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है !
71.	**अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।** **अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।।** **गीता अध्याय 16,**	अहिंसा परमो धर्मः मतलब अहिंसा करना धर्म के खिलाफ है। लेकिन धर्म पर ही संकट आ जाए, तो अहिंसा करना धर्म के विरुद्ध नहीं है।
72.	**अहिंसा परमो धर्मस्थाहिंसा परो दमः ।** **अहिंसा परमं दानम् अहिंसा परम तपः ।।** **अहिंसा परमो यज्ञस ततस्मि परम फलम् ।** **अहिंसा परमं मित्रम अहिंसा परमं सुखम् ।।** **"अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः"**	अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । वही उत्तम इन्द्रिय निग्रह है । अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ दान है , वही उत्तम तप है । अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है और वही परमोपलब्धि है । अहिंसा ही परममित्र है , और वही परम सुख है । अहिंसा परम धर्म है, लेकिन धर्म की रक्षा के लिए की जाने वाली धार्मिक हिंसा उससे भी बड़ा धर्म है।
73.	**आचारं कुलमाख्याति, व पुराख्याति भोजनम्।वचनं श्रुतिमाख्याति, स्नेहमाख्याति लोचनम्॥[चाणक्य नीति]**	किसी भी व्यक्ति के आचरण से उसके कुल का, शरीर देखकर भोजन का, वाणी से उसकी योग्यता का ज्ञान होता है और उसी प्रकार आँखों से प्रेम का आभास होता है।
74.	**अहो दुर्जनसंसर्गात् मानहानिः पदे पदे।** **पावको लौहसंगेन मुद्गरैरभिताड्यते॥**	दुष्ट के संग रहने पर कदम कदम पर अपमान होता है। पावक (अग्नि) जब लोहे के साथ होता है तो उसे घन से पीटा जाता है।

75.	**आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।** **सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति॥**	जिस प्रकार आकाश से गिरा हुआ पानी जैसे समुद्र में जाता है, उसी प्रकार किसी भी देवी-देवता को किया गया नमस्कार-पूजा-अर्चना परमात्मा श्री हरि (श्री कृष्ण) को जाता है।
76.	**आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः।** **आचारः परमं ज्ञानम् आचरात् किं न साध्यते॥**	सदाचार परम धर्म, सबसे बड़ा तप, सबसे बड़ा ज्ञान और वह साधन जिससे परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है।
77.	**आचाराल्लभते धर्मम् आचाराल्लभते धनम् ।** **आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥** **सुभाषितरत्नभाण्डागारम्**	सदाचार से ही धर्म की प्राप्ति होती है, सदाचार से ही धन की प्राप्ति होती है, सदाचार से ही उच्च स्थान प्राप्त होता है, सदाचार से ही अशुभ लक्षणों का नाश होता है।
78.	**आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।** **उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा।।**	जनसमुदाय के साथ वेदों के जन्म की तिथि आनुवंशिक विविधता की जन्म तिथि, जन्म से लेकर विद्यत सत्य सत्य, अल्प विविधता और अमर होने की तिथि है।
79.	**आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्।**	जैसा किसी से स्वयं चाहते हैं, वैसा ही आचरण या व्यवहार उसे दूसरों के साथ भी करना चाहिए, क्योंकि ऐसा व्यवहार करने पर स्वयं के साथ-साथ दूसरे को भी शांन्ति मिलती है।
80.	**आदौ माता गुरोः पत्नी ब्राह्मणी राजपत्निका।** **धेनुर्धात्री तथा पृथ्वी सप्तैता मातरः स्मृताः॥**	अपनी जननी, गुरु-पत्नी, ब्राह्मण-पत्नी, राजपत्नी, गाय, धात्री (दूध पिलानेवाली दाई) और पृथ्वी-ये सात माताएँ कही गयी हैं ॥

81.	**आपत्सु मित्रं जानीयाद् रणे शूरं ऋणे शुचिम् ।** **भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ॥**	आपत्ति में-मित्र को, युद्ध में-वीर को, ऋण में-साफ, निष्कपट को, निर्धनता में-स्त्रीको, दुःख पड़ने पर-भाई बन्धुओं को पहचानना चाहिये ॥
82.	**आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि ।** **आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥**	विपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए । धन से अधिक रक्षा पत्नी की करनी चाहिए । अपनी रक्षा का प्रसन सम्मुख आने पर धन और पत्नी का बलिदान भी करना पड़े तो नहीं चूकना चाहिए ।
83.	**आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।** **तज्जयः सम्पदा मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥**	इन्द्रियोंको वशमें नहीं लाना सब विपत्तियोंका मार्ग बतलाया गया है और इनको जीत लेना सब प्रकारके सुखोंका उपाय है। इन दोनोंमें जो मार्ग उत्तम है उसीसे गमन करना चाहिये ॥
84.	**आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।** **मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने ॥**	आने वाली आपदाओं के बारे में, यहाँ तक कि शुभचिंतक भी कारण बन जाता है; बछड़े को बांधने के लिए उसकी माँ की टांग ही डंडा बन जाती है।
85.	**आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः।** **राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः॥**	बड़ोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोधसे धनका क्षय, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होता है ॥
86.	**आमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।** **अयोग्यः पुरूषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥**	ऐसा कोई अक्षर नही जिनसे मंत्र नही बनता हो। ऐसी कोई वनस्पति नही जिससे औषध न बनती हो। कोई मनुष्य अयोग्य नही है, उसे कार्य मे लगाने वाला (योजक) ही दुर्लभ है।

87.	**आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च । पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥**	"जीवनकाल, कर्म, धन, ज्ञान और मृत्यु—ये पाँच जीवात्मा] के लिए गर्भ में स्थित, जन्म के समय से हो निर्धारित होते हैं "
88.	**आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्। दानमानापमानं च नवैतानि सुगोपयेत्।।**	हर व्यक्ति को अपनी आयु, गृह के दोष, मैथुन, मन्त्र, धन, दान, औषधि, मान-सम्मान, अपने अपमान, अपनी योग्यता को हमेशा सभी से छुपाकर ही रखना चाहिए ।
89.	**आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न न लभ्यते। नीयते स वृथा येन प्रमादः सुमहानहो ॥**	आयु का एक क्षण भी सारे रत्नों को देने से प्राप्त नहीं किया जा सकता है, अतः इसको व्यर्थ में नष्ट कर देना महान असावधानी है
90.	**आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृध्दिमती च पश्चात् । दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्रिः खलसज्जनानाम् ॥**	दुर्जनों की मित्रता दिन के पूर्वार्द्ध में रहने वाली छाया की तरह प्रारम्भ से अधिक और फिर धीरे-धीरे कम होती रहती है एवं सज्जनों की मित्रता दिन के उत्तरार्ध की छाया की तरह पहले कम और फिर उत्तरोत्तर बढ़ने वाली होती है।
91.	**आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।।**	मनुष्यों के लिए आलस्य उनके शरीर में बसा महान शत्रु है। उद्यमी व्यक्ति के लिए परिश्रम जैसा कोई मित्र नहीं होता, क्योंकि परिश्रम करने वाला कभी दुखी नहीं होता।
92.	**आशायाः ये दासाः ते दासास्सर्वलोकस्य । आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ॥**	जो लोग आशा के दास होते हैं वे सब लोगों के दास होते हैं। किन्तु आशा जिनकी दासी होती है, लोग उनके दास बनकर आचरण करते हैं।

93.	**आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥**	आहार, निद्रा, भय और मैथुन, ये तो इन्सान और पशु में समान है। इन्सान में विशेष केवल धर्म (वर्णाश्रम धर्म, कर्म, कर्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण, सद्-गुण) है अर्थात् बिना धर्म के लोग पशु तुल्य है
94.	**आहारनिद्राभयसन्ततित्वं सामान्यमेतत्प शुभीर्नरा णाम्। ज्ञानं हि तेषामधिकं विशिष्टं ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।**	मनुष्य और पशुओं में भोजन, निद्रा, भय और सन्तान एक समान है, परन्तु ज्ञान ही वह गुण है जो मनुष्य में विशेष है, इसलिए ज्ञान विहीन मनुष्य पशु के समान होता।
95.	**इज्याध्ययन दानानि , तपः सत्यं धृतिः क्षमा । अलोभ इति मार्गोऽयं ,धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ।***	यज्ञ, अध्ययन, दान, तप,सत्य, धैर्य, क्षमा और अलोभ धर्म के ये आठ प्रकार के मार्ग हैं।
96.	**इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा । अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥**	जीवन को धर्म (जीवन के नैतिक कोड) के अनुसार जीने के आठ तरीके निम्नलिखित हैं: पवित्र अनुष्ठान, अध्ययन, दान, तप, सत्य, साहस, क्षमा, और लालच की कमी।
97.	**इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः। तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥**	इंद्रियाँ यदि वश में न हो तो ये विषय -भोगों में लिप्त हो जाती हैं। उससे मनुष्य उसी प्रकार तुच्छ हो जाता है ,जैसे सूर्य के आगे सभी ग्रह।
98.	**ईर्ष्या घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः। परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः।।**	जो ईर्ष्यालु, द्वेषी, असंतुष्ट, क्रोधी, हर विषय में सन्देह करने वाला और दूसरों के भाग्य के आधार पर जीने वाला, अर्थात् आश्रित, ये छह प्रकार के मनुष्य हर समय दुखी रहते हैं।

99.	**उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः । पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥**	उत्तम वर्ण के घर में यदि नीच वर्ण भी अतिथि होकर आये तो उसका भी यथायोग्य सत्कार करना चाहिये, क्यों कि अतिथि देवता सरूप है
100.	**उत्तिष्ठत, जाग्रत, वरान् प्राप्य निबोधत । क्षुरस्य निशिता धारा दुरत्यया (आत्मज्ञानस्य) तत् पथः दुर्गं कवयः वदन्ति । कठोपनिषद्,१**	उठो, जागो, और जानकार श्रेष्ठ पुरुषों के सान्निध्य में ज्ञान प्राप्त करो । विद्वान् मनीषी जनों का कहना है कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग उसी प्रकार दुर्गम है जिस प्रकार छुरे के पैना किये गये धार पर चलना ।
101.	**उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम्। मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥**	रोज उठकर "आज क्या सुकृत्य किया" यह जान लेना चाहिए, क्यों कि सूर्य (हररोज) आयुष्य का छोटा तुकडा लेकर अस्त होता है।
102.	**उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे । राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥**	हर्ष में, शोक में, दुर्भिक्ष पड़ने पर, राज्य क्रान्ति के समय, राज-द्वार (कचहरी) में और श्मशान में जो साथ देता है, वही सच्चा मित्र है ॥
103.	**उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्। सोत्साहस्य च लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥**	जिस व्यक्ति के भीतर उत्साह होता है वह बहुत बलवान होता है। उत्साह से बढ़कर कोई अन्य बल नहीं है, उत्साह ही परम् बल है। उत्साही व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।
104.	**उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम्। विरक्तस्य तृणं भार्या निः स्पृहस्य तृणं जगत्॥**	उदारके लिये धन, शूरवीरके लिये मरण, विरक्तके लिये स्त्री और निः स्पृहके लिये जगत् तिनकेके तुल्य है॥
105.	**उदये सविता रक्तो रक्तशचास्तमये तथा। सम्पत्तौ च विपत्तौ च महामेकरूपता॥)महाभारत)**	जिस प्रकार से सूर्य सुबह उगते तथा शाम को अस्त होते समय दोनों ही समय में लाल रंग का होता है (अर्थात् दोनों ही संधिकालों में एक समान रहता है), उसी प्रकार महान लोग अपने अच्छे और बुरे दोनों ही समय में एक जैसे एक समान)धीर बने) रहते हैं।

106.	**उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र दैवं सहायकृत्।।**	जो जोखिम लेता हो (उधम), साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम जैसे ये 6 गुण जिस व्यक्ति के पास होते हैं, उसकी मदद भगवान भी करता है।
107.	**उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि मनोरथैः। न हि सुप्तस्य सिंह प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।**	काम केवल इच्छा से ही सफल नहीं होता, यह उद्योग द्वारा सिद्ध होता है, जैसे हिरण सोते हुए शेर के मुंह में नहीं जाता, उसका अध्ययन करना पड़ता है।
108.	**उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्म शक्त्या, यले कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥**	उद्योगी वीर पुरुषको लक्ष्मी पुरुषार्थ से मिलती है, कायर कहा करते हैं कि जो मिलता है वह 'भाग्यसे मिलता है', भाग्यकी बात छोड़कर अपनी शक्तिसे पुरुषार्थ करो; यत्न करनेपर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो इसमें दोष ही क्या है?
109.	**उपकारः परो धर्मः परार्थं कर्म नैपुणम्। पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता॥**	उपकार ही परमधर्म है, दूसरोंके लिये किया हुआ कर्म चातुर्य है, सत्पात्र को दान देना ही परम काम है, तृष्णाहीनता ही परम मोक्ष है॥
110.	**उपकाराच्च लोकानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम् । भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां मैत्री स्याद् दर्शनात् सताम्**	लोगों के बीच सहायता से, पशुपक्षियों के बीच किसी हेतु से, मूर्खों के बीच भय और लोभ के कारण और सज्जनों के बीच (केवल) दर्शन से- मित्रता होती है।
111.	**उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् । तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि ॥**	जो प्राणी-उपकारी, विश्वासी, एवं निष्कपट प्राणी के साथ भी विश्वासघात करता है, उस कपटी झूटे नीच पुरुष को तुम कैसे धारण करती हो?

112.	**उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये। पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम्।।**	मूर्खों को दिया हुआ उपदेश उनके क्रोध को बढ़ाता ही है शांत नहीं करता। जिस प्रकार साँपों को पिलाया हुआ दुध हमेशा उनका विष ही बढ़ाता है।
113.	**उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥**	दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य होता है, सौ आचार्यों से बढ़कर पिता होता है, परन्तु पिता से हजार गुणा बढ़कर माता गौरवमयी होती है।
114.	**उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः। श्रृगालेन हतो हस्ती गच्छता पंक्ङवर्त्मना।।**	जो कार्रवाई उपायों के माध्यम से किया जा सकता है। वह काम सत्ता से नहीं हो सकता। जैसे कीचड़ के रास्ते से चलते हुए सियार ने हाथी को मार डाला।
115.	**उप्तं सुकृतबीजं हि सुक्षेत्रेषु महाफलम् । कथा सरित सागर**	सही स्थान पर बोया गया सुकर्म का बीज ही महान् फल देता है।
116.	**उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः । स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥**	शुक्राचार्य और बृहस्पति भी जिन शास्त्रों को अपने गुरु से पढकर ही जानसके हैं, वे सब शास्त्र स्त्रियों की बुद्धि में स्वभाव से ही रहते हैं ॥
117.	**ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी । भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः॥**	ऋणकर्ता पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती भार्या शत्रु, गुणरहित, ज्ञानशून्य पुत्र शत्रु है।
118.	**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः । शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥**	धर्म ही केवल एक ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी साथ देता है। और सब सम्पत्ति तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती है ॥

119.	**एकवर्णं यथा दुग्धं भिन्नवर्णासु धेनुषु। तथैव धर्मवैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं स्मृतम्॥**	जिस प्रकार अनेक रंगों की गायें श्वेत रंग का ही दूध देती हैं, उसी प्रकार विभिन्न धर्मों में एक ही परम तत्त्व का उपदेश दिया गया है।
120.	**एकस्य दुखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य। तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभन्ति।।**	जैसे समुद्र के पार, एक दुख समाप्त होने तक, दूसरा बीच में प्रकट होता है। ठीक ही कहा गया है कि जब कोई आपदा आती है तो उसके साथ कई आपदाएं भी आती हैं।
121.	**एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां; पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्य ताम्। प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिश्यतां; प्रारब्धंत्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्॥**	एकांत के सुख का सेवन करें, परब्रह्म में चित्त को लगायें, परब्रह्म की खोज करें, इस विश्व को उससे व्याप्त देखें, पूर्व कर्मों का नाश करें, मानसिक बल से भविष्य में आने वाले कर्मों का आलिंगन करें, प्रारब्ध का यहाँ ही भोग करके परब्रह्म में स्थित हो जायें।
122.	**एकेन शुष्कवृक्षण दह्यमानेन वह्निना। दह्यते हि वनं सर्व कुपुत्रेण कुलं यथा ॥**	जिस प्रकार एक ही सूखा वृक्ष स्वयं आगसे जलता हुआ समस्त वनको जला देता है, उसी प्रकार एक ही कुपुत्र अपने वंशके नाशका कारण होता है
123.	**एकेनापि सुवृक्षण पुष्पितेन सुगन्धिना। वासितं स्याद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥**	जैसे एक ही उत्तम वृक्ष विकसित होकर अपनी सुगन्धसे समस्त वनको सुवासित कर देता है, वैसे ही एक सुपुत्र समस्त कुलको यशका भागी बनाता है ॥
124.	**एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा। विद्यैका परमा तृप्तिः अहिंसैका सुखावहा ।।**	एक ही धर्म सबसे श्रेष्ठ है। क्षमा शांति का उतम उपाय है। विद्या से संतुष्टि प्राप्त होती है और अहिंसा से सुख प्राप्त होती है।

125.	**ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो, ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः अक्रोधस्तपसः क्षमाप्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता , सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परंभूषणम्॥**	ऐश्वर्यकी शोभा सुजनतासे है, शूरवीरताकी शोभा कम बोलना है, ज्ञानकी शान्ति, शास्त्राध्ययनकी नम्रता, धनकी सत्पात्रको दान करना, तपकी अक्रोध, समर्थकी क्षमा, धर्मकी दम्भहीनता और सबकी शोभा सुशीलता है, जो सभी सद्गुणोंकी हेतु है ॥
126.	**कः खगीघाङ्चिच्छौजाझाञ्ज्ञोऽटौठीडढणः ।तथोदधीन पफर्बाभीर्मयोऽरिल्वाशिषां सह॥**	पक्षियों का प्रेम, शुद्ध बुद्धि का, दूसरे का बल अपहरण करने में पारंगत, शत्रु-संहारकों में अग्रणी, मन से निश्चल तथा निडर और महासागर का सर्जन करनार कौन? राजा मय! जिसको शत्रुओं के भी आशीर्वाद मिले हैं।
127.	**कंकणस्य तु लोभेन मग्नः पंकेशसुदुस्तरे। वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा।।**	जैसे सोने के कंगन के लालच में बूढ़ा पथिक गहरी कीचड़ में मर जाता है, और बूढ़ा बाघ उसे खा जाता है।
128.	**कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ। कस्याहं का मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥**	समय कैसा है? मित्र कौन हैं? देश कौन-सा है? आय और व्यय कितना है? मैं किसका हूँ? और मेरी शक्ति कितनी है? इसका बार-बार विचार करना चाहिये ॥
129.	**कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी। अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते।।**	जैसे दोनों हाथ शरीर का बिना विचारे हित करते हैं, दोनों पलकें आँखों का बिना विचारे ध्यान रखती हैं, वैसे ही जो मित्र, मित्र का बिना विचारे प्रिय करता है वही मित्र (वास्तव में) मित्र होता है।

130.	**करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया। मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्॥**	मैं यह कार्य करूंगा ,वह कार्य करूंगा या मुझे वह कार्य करना है , इस प्रकार की चिन्तायें करते करते मनुष्य यह भी भूल जाता है कि उसकी मृत्यु किसी भी क्षण हो सकती है ।
131.	**कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्। कर्मस्व भ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्॥ [मनु स्मृति]**	राजा सुप्तावस्था में कलि होता है, सोते से जागने पर द्वापर, कर्म करने को उद्यत होने पर त्रेता और कर्म करता, सत्य युग होता है।
132.	**कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुः खमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥**	किसने केवल सुख ही देखा है और किसने केवल दुःख ही देखा है, जीवन की दशा एक चलते पहिये के घेरे की तरह है जो क्रम से ऊपर और नीचे जाता रहता है।
133.	**कस्यापि नास्ति सम्बन्धी समयो धरणीतले। समयमवलोक्यैव सम्बधिनो भवन्ति च ।।**	जगत मे समय किसी का सम्बन्धी नहि होता, सब समय देख कर हि सम्बन्धी बनाते है ।
134.	**काक चेष्टा, बको ध्यानं, स्वान निद्रा तथैव च। अल्पहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणं।।**	विद्यार्थी में हमेशा कौवे की तरह कुछ नया सीखाने की चेष्टा, एक बगुले की तरह एक्राग्रता और केन्द्रित ध्यान एक आहत में खुलने वाली कुते के समान नींद, गृहत्यागी और अल्पाहारी अपनी आवश्यकता के अनुसार खाने वाला जैसे पांच लक्षण होते है।
135.	**काकतालीयवत् प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः । न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते ॥**	भले ही भाग्य से कोई एक खजाना सामने पड़ा हुआ दिखाई दे जाये, परन्तु भाग्य इसे उठाकर हाथ में नहीं देता, उसे उठाने का प्रयास तो करना ही पड़ता है। अर्थात बिना पुरुषार्थ के भाग्य भी मौन रहता है ।

136.	**काको कृष्णः पिको कृष्णः को भेदो पिककाकयो वसन्तकाले संप्राप्ते काको काकः पिको पिकः॥**	कोयल भी काले रंग की होती है और कौवा भी काले रंग का ही होता है फिर दोनों में क्या भेद (अन्तर) है? वसन्त ऋतु के आगमन होते ही पता चल जाता है कि कोयल कोयल होती है, कौवा कौवा होता है।
137.	**काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीर्द्युतीः । तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्॥**	कांच का टुकडा सोने से संपर्क के कारण पन्ना जैसा तेज धारण करता है। उसी तरह से सज्जनों के सहवास से मूर्ख मनुष्य भी कुशलता को प्राप्त करता है।
138.	**कामान् दुग्घे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति। तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः॥**	धैर्यवानों ने सत्य एवं प्रिय वाणी को शुद्ध, शान्त एवं मंगलों की माता रूपी गाय की संज्ञा दी है, जो इच्छाओं को पूर्ण करती है, दरिद्रता को हरती है, कीर्ति को जन्म देती है एवं पाप का नाश करती है।
139.	**कार्यार्थी भजते लोकं यावत्कार्य न सिद्धति। उत्तीर्णे च परे पारे नौकायां किं प्रयोजनम्।।**	जब तक काम पूरे नहीं होते हैं तब तक लोग दूसरों की प्रशंसा करते हैं। काम पूरा होने के बाद लोग दूसरे व्यक्ति को भूल जाते हैं। ठीक उसी तरह जैसे नदी पार करने के बाद नाव का कोई उपयोग नहीं रह जाता है।
140.	**कालाय तस्मै नमः।। कालेन समौषधम्।।**	समय सबसे बेहतर मरहम लगाने वाला है।
141.	**कालोऽयं विलयं याति भूतगर्ते क्षणे क्षणे स्मृतयस्त्ववशिष्यन्ते जीवयन्ति मनांसि :**	प्रत्येक क्षण, समय अतीत की खाई में गायब हो जाता है, केवल स्मृतियाँ रह जाती हैं, और वे सदैव हमारे मन को सजीव रखती हैं।

142.	**काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमतां।** **व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।**	बुद्धिमान लोग काव्य-शास्त्र का अध्ययन करने में अपना समय व्यतीत करते हैं। जबकि मुर्ख लोग निंद्रा, कलह और बुरी आदतों में अपना समय बिताते हैं।
143.	**किन्नु हित्वा प्रियो भवति। किन्नु हित्वा न सोचति।** **किन्नु हित्वा अर्थवान् भवति। किन्नु हित्वा सुखी भवेत्।**	किस चीज को छोड़कर मनुष्य प्रिय होता है? कोई भी चीज किसी का हित नहीं सोचती? किस चीज का त्याग करके व्यक्ति धनवान होता है? और किस चीज का त्याग कर सुखी होता है?
144.	**किमप्यस्ति स्वभावेन सुन्दरं वाप्यसुन्दरम् ।** **यदेव रोचते यस्मै तद्भवेत्तस्य सुन्दरम् ॥** **हितोपदेश**	किसी भी वस्तु की सुन्दरता और कुरूपता का कारण उसके स्वभावगुण कहाँ होते है, जो जिसको प्रिय है, वही उसको सुन्दर प्रतीत होती है।
145.	**कीटोऽपि सुमनःसंगादारोहति सतां शिरः ।** **अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥**	पुष्प के संग से कीडा भी अच्छे लोगों के मस्तक पर चढता है । बडे लोगों से प्रतिष्ठित किया गया पत्थर भी देव बनता है ।
146.	**कुत्र विधेयो यत्नः विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।** **अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु॥**	यत्न किस के लिए करना चाहिए? विद्याभ्यास, सदौषध और परोपकार के लिए। अनादर किसका करना ? दुर्जन, परायी स्त्री और परधन का।
147.	**कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।** **चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम्।।**	चरित्र ही अकुलीन को कुलीन, भीरू(कायर) को वीर , और अपावन को पावन सिद्ध करता है।

148.	**कुसुमं वर्णसंपन्नं गन्धहीनं न शोभते। न शोभते क्रियाहीनं मधुरं वचनं तथा॥**	जिस प्रकार से गन्धहीन होने पर सुन्दर रंगों से सम्पन्न पुष्प शोभा नहीं देता, उसी प्रकार से अकर्मण्य होने पर मधुरभाषी व्यक्ति भी शोभा नहीं देता।
149.	**कुसुमस्तबकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः । सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽथवा ॥**	फूल के गुच्छे की तरह मनस्वी मनुष्य की भी दो ही वृत्तियाँ होती हैं। या तो वह सब के (शिर के) ऊपर ही रहता है, अथवा वह वन में ही पड़ा-पड़ा नष्ट हो जाता है ॥
150.	**कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं तथा गतस्य शोचनं नास्ति ह्येतद्वेदविदां मतम् ॥**	जो किया जा चुका है, उसको (उसी समय, स्थान व प्रकार) पुनः नहीं किया जा सकता । मृत को पुनः नहीं मारा जाता । बीत गया के लिए सोच-विचार करना व्यर्थ है, ऐसा शास्त्रज्ञाताओं का मत है
151.	**कृते प्रतिकृतं कुर्यात्ताडिते प्रतिताडितम्। करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रतिचुम्बितम्।।**	हर कार्रवाही के लिए एक जवाबी कार्रवाही होनी चाहिए। हर प्रहार के लिए एक प्रति-प्रहार और उसी तर्क से हर चुम्बन के लिए एक जवाबी चुम्बन।
152.	**केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला, न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः। वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते, क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥**	पुरुषको न तो केयूर (बाजूबंद), न चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न उबटन, न फूल और न सजाये हुए बाल ही सुशोभित कर सकते हैं, पुरुष यदि संस्कृत वाणीको धारण करे तो एकमात्र वही उसकी शोभा बढ़ा सकती है, इसके अतिरिक्त और जितने भूषण हैं, वे तो सब नष्ट हो जाते हैं, सच्चा भूषण तो वाणी ही है॥

153.	**केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।** **सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति॥**	हमारे जीवन में सुख और दुख होते हैं। हमारे द्वारा किए गए कार्यों के परिणाम स्वरूप ही शुभ और अशुभ फल प्राप्त होते हैं। ग्रहों और नक्षत्रों की गति के कारण यह हुआ है, यह मात्र लोगों का कथन है।
154.	**को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलापूरणाढकैः ।** **वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रूयते पिता॥**	गुणरहित बहुतसे पुत्रोंसे कौन धन्य हुआ है? परंतु कुलको सहारा देनेवाला एक ही पुत्र अच्छा है, जिससे *पिताका नाम* सुना जाता है
155.	**को धर्मो भूतदया किं सौख्यं नित्यमरोगिता** **जगति । कः स्नेहः सद्भावः किं पाण्डित्यं परिच्छेदः**	धर्म क्या है? प्राणियों पर दया । संसार में सुख क्या है? नीरोग रहना । स्नेह क्या है? सद्भाव अनुराग, प्रेम । पाण्डित्य क्या है? सत् असत् का विवेक । अर्थात्- उचित अनुचित का ठीक ठीक समझना ॥
156.	**को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः** **स्मृतः यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्** **यद्दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते** **तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः**	वीर एवं मनस्वी पुरुष के लिये कौन अपना देश है कौन-कौन विदेश है? वह जिस देश में जाता है, उसी को अपने बाहुबल से अपना कर लेता है । दाँत, नख, और पूंछ ही आयुध जिसके हैं, ऐसा वीर सिंह जिस वन में जाता है, वन में हाथियों को मारकर, उनके रुधिर से अपनी प्यास बुझाता है॥
157.	**कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरे व्यवसायिनाम्।** **को विदेशः सविद्यानां कःपरःप्रियवादिनाम्॥**	शक्तिशालीके लिये अधिक बोझ क्या है, व्यापारीके लिये दूर क्या है? विद्वान्के लिये विदेश और मधुरभाषीके लिये शत्रु कौन है?
158.	**कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्।** **विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्॥**	कोकिला का सौन्दर्य स्वर है, और स्त्री का सौन्दर्य पातिव्रत्य है, तपस्वी का सौन्दर्य क्षमा है, कुरुप का सौन्दर्य विद्या है ।

159.	**कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान न धार्मिकः । कथञ्चित्स्वोदरभराः किन्न शूकर शावकाः।। काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम्॥**	उस पुत्र का कोई प्रयोजन नहीं, जो न विद्वान न धार्मिक है । सुअर को बहुत तुच्छ माना जाता है, इसलिए कहीं उसके बच्चे किसी तरह अपना पेट न भर लें। कानी आँखके रहनेसे क्या लाभ? उससे तो केवल नेत्रकी पीड़ा होती है।।
160.	**क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः। अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥ किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स प्रभुः।सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः ॥**	किसी कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारी द्वारा स्वामी को धोखा नहीं दिया जाना चाहिए। वस्तुतः ऐसी वाणी, जो हितकारी भी हो और मनोहर भी लगे, दुर्लभ है। वह मंत्री कैसा जो ,उचित किन्तु अप्रिय लगनेवाली, सलाह न दे, और वह राजा कैसा जो हितकारी, किन्तु कठोर बात न सुन सके। राजा और मंत्री में परस्पर अनुकूलता, होने पर ही राज्य के प्रति सभी प्रकार की समृद्धियां अनुरक्त होती हैं।
161.	**क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुः लोभो व्याधिरनन्तकः । सर्वभूतहितः साधुः असाधुर्निदयः स्मृतः ॥**	क्रोध को मनुष्य का जीतने में कठिन शत्रु कहा गया है, लोभ कभी न ख़त्म होने वाला रोग कहा गया है। साधु पुरुष वह है जो दूसरों के कल्याण में लगा हुआ है और असाधु वह है जो दया से रहित है।
162.	**क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः। क्रोधो हि असि महातीक्षणःसर्वे क्रोधो अपकर्षति॥**	क्रोध एक ऐसा शत्रु है जो मनुष्य स्वयं ही उत्पन्न करता है, इससे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, क्रोध में मनुष्य दूसरे के ही नहीं अपने भी प्राण संकट में डाल देता है,

163.	**क्रोधः प्रीतिं प्रणाशयति मानो विनयनाशनः । माया मित्त्राणि नाशयति लोभः सर्वविनाशनः ॥**	क्रोध प्रेम को नष्ट कर देता है, अभिमान विनय को नष्ट कर देता है, पाखंड मित्रता को नष्ट कर देता है, जबकि लोभ(लालच) सब कुछ नष्ट कर देता है।
164.	**क्रोधो मूलमनर्थानां क्रोधः संसारबन्धनम्। धर्मक्षयकरः क्रोधः तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्॥**	मनुष्य को क्रोध का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि वह समस्त विपत्तियों-आपदाओं की जड़, संसार बंधन का कारण, धर्म नाश करने वाला है।
165.	**क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी। विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥**	क्रोध यमराज के समान है और तृष्णा नरक की वैतरणी नदी के समान। विद्या सभी इच्छाओं को पूरी करने वाली कामधेनु है और संतोष स्वर्ग का नंदन वन है ।
166.	**क्रोरारिकारी कोरेककारक कारिकाकर। कोरकाकारकरक: करीर कर्करोऽकर्रुक॥**	क्रूर शत्रुओं को नष्ट करने वाला, भूमि का एक कर्ता, दुष्टों को यातना देने वाला, कमलमुकुलवत, रमणीय हाथ वाला, हाथियों को फेंकने वाला, रण में कर्कश, सूर्य के समान तेजस्वी था।
167.	**क्वचित् सर्पोऽपि मित्रत्वमियात् नैव खलः क्वचित्। न शोषशायिनोऽप्यस्य वशे दुर्योधनः हरेः॥**	कभी सर्प भी मित्र बन सकता है, किन्तु दुष्ट कभी मित्र नहीं बनाया जाता। शेषनाग पर शयन करनेवाले हरि का भी दुर्योधन मित्र न बना
168.	**क्वचिद्रुष्टः क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे। अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥**	जो कभी रुष्ट होता है, कभी प्रसन्न होता है; इस प्रकार क्षण-क्षणमें रुष्ट और प्रसन्न होता रहता है, उस चञ्चलचित्त पुरुषकी प्रसन्नता भी भयङ्कर ही है।

169.	**क्षणशः कणशश्चैव विद्यां अर्थं च साधयेत्।** **क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम्।।**	सीखने के लिए हर क्षण का उपयोग करना चाहिए और इसे संरक्षित करने के लिए हर छोटे सिक्के का उपयोग करना चाहिए। क्षण को नष्ट करके शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती और सिक्कों को नष्ट करने से धन प्राप्त नहीं किया जा सकता।
170.	**क्षत्रियो हि प्रजारक्षन शस्त्रपाणिः प्रदण्डयन ।** **निर्जित्य परसैन्यादि क्षितिं धर्मण पालयेत ॥**	क्षत्रिय का धर्म है कि वह सभी क्लेशों से नागरिकों की रक्षा करे इसीलिए उसे शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए हिंसा करनी पड़ती है । अतः उसे शत्रु राजाओं के सैनिकों को जीत कर धर्मपूर्वक संसार पर राज्य करना चाहिए ।
171.	**क्षमया दयया प्रेम्णा सूनृतेनार्जवेन च।** **वशीकुर्याज्जगत् सर्वं विनयेन च सेवया॥**	क्षमा, दया, प्रेम, मधुर वचन, सरल स्वभाव, नम्रता और सेवासे सब संसारको वशमें करना चाहिये ॥
172.	**क्षमा बलमशक्तानाम् शक्तानाम् भूषणम् क्षमा।** **क्षमा वशीकृते लोके क्षमयाः किम् न सिद्ध्यति॥**	क्षमा निर्बलों का बल है, क्षमा बलवानों का आभूषण है, क्षमा ने इस विश्व को वश में किया हुआ है, क्षमा से कौन सा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है।
173.	**क्षमावशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।** **शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः।।**	क्षमा दुनिया का सबसे बड़ा वशीकरण है। क्षमा के साथ क्या नहीं किया जाता है? जिसके हाथ में क्षमा की तलवार है, दुष्ट उसका क्या कर सकता है?

174.	**क्षुधा-तृष्टा-आशा कुटुम्बिन्या मयि जीवति न अन्यगाः । तेषाम् आशा महासाध्वी कदाचित् मां न मुञ्चति ॥**	क्षुधा , तृष्णा और आशा ये तीनों मनुष्य की तीन पत्नियों के समान हैं , जो मृत्यु पर्यन्त उसका साथ छोड़ने वाली नहीं हैं । इन तीनों में आशा 'महासाध्वी' के समान है जो मनुष्य का साथ कभी नहीं छोड़ती
175.	**क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां; स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्। शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यतां, औदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥**	भूख को रोग समझते हुए प्रतिदिन भिक्षा रूपी औषधि का सेवन करें, स्वाद के लिए अन्न की याचना न करें, भाग्यवश जो भी प्राप्त हो उसमें ही संतुष्ट रहें। सर्दी-गर्मी आदि विषमताओं को सहन करें, व्यर्थ वाक्य न बोलें, निरपेक्षता की इच्छा करें, लोगों की कृपा और निष्ठुरता से दूर रहें।
176.	**गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा। पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः॥**	गंगा पाप नष्ट करती है , चंद्रमा ताप नष्ट करता है और कल्पवृक्ष दीनता नष्ट करता है सज्जन पाप, ताप और दैन्य (तीनों को) नष्ट करते है ।
177.	**गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् । वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः॥**	बीते हुए समय का शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य के लिए परेशान नहीं होना चाहिए, बुद्धिमान तो वर्तमान में ही कार्य करते हैं
178.	**गर्भे व्याधौ स्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्।सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात्॥**	गर्भ में, बीमारी में, श्मशान में और पुराण श्रवण करते समय मनुष्य के मन में अच्छे विचार आते भगवान् की कथा श्रवण करते समय, यदि ये विचार स्थिर और दृढ हों जायें तो मनुष्य-प्राणी भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

179.	**गर्वाय परपीड़ाय दुर्जस्य धनं बलम्।** **सज्जनस्य दानाय रक्षणाय च ते सदा॥**	दुर्जन (दुष्ट) का धन और बल गर्व तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाना होता है और सज्जन का दान एवं निर्बलों की रक्षा करना होता है
180.	**गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ ,** **परिणतिरवधाया यत्नतः पण्डितेन।** **अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते,** **र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥**	अच्छा या बुरा किसी भी कामका आरम्भ करनेवाले विद्वान्को पहले ही यत्नपूर्वक उसके भले-बुरे परिणामका निश्चय कर लेना चाहिये; क्योंकि बहुत जल्दमें किये गये कर्मोंका दुष्परिणाम मरने तक मनुष्यके हृदयमें जलन पैदा करनेवाला और शूलके समान चुभनेवाला होता है ॥
181.	**गुणवन्तः क्लिश्यन्ते प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः** **सुखिनः। बन्धनमायान्ति शुकाः यथेष्टसंचारिणः** **काकाः॥**	गुणवान को क्लेश भोगना पड़ता है और निर्गुण सुखी रहता है जैसे कि तोता अपनी सुन्दरता के गुण के कारण पिंजरे में डाल दिया जाता है किन्तु कौवा आकाश में स्वच्छन्द विचरण करता है।
182.	**गुणानामन्तरं प्रायस्तज्ञो वेत्ति न चापरम्।** **मालतीमल्लिकाऽऽमोदं घ्राणं वेत्ति न लोचनम्।।**	गुणों, विशेषताओं में अंतर प्रायः विशेषज्ञों, ज्ञानीजनों द्वारा ही जाना जाता है, दूसरों के द्वारा कदापि नहीं। जिस प्रकार चमेली की गंध नाक से ही जानी जा सकती है, आंख द्वारा कभी नहीं।
183.	**गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी** **सुसम्भ्रमाद्यस्य।** **तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम॥**	गुणीजनों की गणना आरम्भ करते समय जिसके लिये लेखनी शीघ्रता से नहीं चलती, उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाय तो कहो वन्ध्या कैसी स्त्री होगी?
184.	**गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।** **प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते॥**	प्राणी गुणोंसे उत्तम होता है, ऊँचे आसनपर बैठकर नहीं, कोठेके कँगूरेपर बैठा हुआ कौआ क्या गरुड हो जाता है? ॥

185.	गुरु शुश्रूषया विद्या पुष्कलेन् धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या चतुर्थो न उपलभ्यते॥	ज्ञान-विद्या गुरु की सेवा से, पर्याप्त धन देने से अथवा विद्या के आदान-प्रदान परस्पर विचार-विमर्श से प्राप्त होती है। अतिरिक्त विद्या प्राप्त करने का चौथा तरीका नहीं है।
186.	गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥	अग्नि- द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों) का गुरु (पूज्य) हैं। वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों को, ब्राह्मण गुरु हैं। स्त्री का पति ही गुरु है और अभ्यागत (अतिथि) सभी का गुरु है ॥
187.	गृहं गृहमटन् भिक्षुः शिक्षते न तु याचते । अदत्वा मद्दृशो मा भूः दत्वा त्वं त्वद्दृशो भव ॥	घर-घर घूमते हुए, भिक्षु भीख नहीं मांगता बल्कि शिक्षा देता है: " न देकर मेरे जैसे मत बनो, अतः अपने जैसे ही रहो, देकर।"
188.	गोपायितारं दातारं धर्मनित्यमतन्द्रितम्। अकामद्वेषसंयुक्तमनुरज्यन्ति मानवाः।। सुभाषितरत्नभाण्डागारम्	लोग उस राजा के प्रति स्नेह रखते हैं, जो उनकी रक्षा करता है, दान देता है, धर्म के प्रति समर्पित है, व्यापक जागृत है वासना, घृणा से मुक्त है।
189.	गौरवं प्राप्यते दानात् न तु वित्तस्य सञ्चयात् । स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥	वित्त के संचय से नहीं अपितु दान से गौरव प्राप्त होता है। इसीलिए जल देनेवाले बादलों का स्थान, जल का समुच्चय करने वाले सागर से उच्च है।
190.	घटं भिन्द्यात् पटं छिनद्यात् कुर्याद्रासभरोहण। येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥	घड़े तोड़कर, कपड़े फाड़कर या गधे पर सवार होकर, चाहे जो भी करना पड़े, येन-केन-प्रकारेण प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहिए। (ऐसा कुछ लोगों का सिद्धान्त होता है।)

191.	**गौरवं गुरुषु स्नेहं नीचेषु प्रेम बन्धुषु।** **दर्शयन् विनयी धर्मी सर्वप्रीतिकरो भवेत् ॥**	एक विनम्र, सदाचारी व्यक्ति जो अपने से बड़ों के प्रति प्रेम, छोटे के प्रति स्नेह, अपने परिजनों के प्रति प्रेमभाव रखता है, सभीको प्रिय है।
192.	**घर्मार्तिं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली** **न खण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम् ।** **प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः** **सद्युक्त्या च परिष्कृतं सुकृतिनामाकृष्टि** **मन्त्रोपमम् ॥**	आकर्षण मन्त्र की तरह मन को खींचने वाली, अच्छी २ युक्तियों से युक्त सज्जनों की वाणी चित्त को जितना आनन्द देती है, उतना सुख घाम से सन्तप्त मनुष्यों को- शीतल जल का स्नान, मोती की माला और शरीर में लगा शुभा चन्दन भी नहीं देता है ॥
193.	**घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्।** **तस्माद् घृतञ्च वह्निञ्च नैकत्र स्थापयेद्बुधः ॥**	स्त्री- घी से भरे घड़े के समान है, पुरुष-जलते हुए अङ्गार (अग्नि) है समान है, इस लिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि घृत और अग्नि को एक साथ कभी न रखे ॥
194.	**चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।** **चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः॥**	संसार में चन्दन को शीतल माना जाता है लेकिन चन्द्रमा चन्दन से भी शीतल होता है अच्छे मित्रों का साथ चन्द्र और चन्दन दोनों की तुलना में अधिक शीतलता देने वाला होता है।
195.	**चार मिले चौंसठ खिले; बीस रहे कर जोड़।** **प्रेमी सज्जन दो मिले; खिल गए सात करोड़॥**	चार मिले :- जब भी कोई मिलता है(दोनों की चार आँखें), चौंसठ खिले (दोनों के बत्तीस-बत्तीस दाँत), बीस रहे कर जोड़ (दोनों की दोनों हाथों की प्रणाम की मुद्रा में दस अँगलियाँ), प्रेमी सज्जन दो मिले (दो आत्मीय जन मिलें), खिल गए सात करोड़(शरीर में रोम की गिनती लगभग साढ़े तीन करोड़) हमारा रोम-रोम खिल जाता है।

196.	**चरेद्धानकटुको मुञ्चेत् स्नेहं न नास्तिकः ।** **अनृशंसश्चरेदर्थं चरेत् काममनुद्धतः ॥** **महा**सुभाषित**संग्रह**	बिना कटु(बुरा) हुऐ धर्मकार्य करें , नास्तिक बने बिना बंधनों का त्याग करें , क्रूर बनें बिना भौतिक समृद्धि अर्जित करें और लापरवाह हुए बिना सुख प्राप्त करें।
197.	**चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।** **नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥**	बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो एक पैर से चलता है, अर्थात् एक पैर वह आगे रखता है, और एक पैर पूर्व स्थान पर ही रखे (जमाए) रहता है । इसलिए दूसरे स्थान को पहिले से निर्धारित किये बिना ही पहले स्थान को नहीं छोड़ना चाहिये॥
198.	**चिता चिंता समाप्रोक्ता बिंदुमात्रं विशेषता।** **सजीवं दहते चिंता निर्जीवं दहते चिता॥**	चिंता-फ़िक्र चिता समान है। चिता तो मरे हुए व्यक्ति को, केवल एक बार ही जलाती है; परन्तु चिंता व्यक्ति को बार-बार जलाती है।
199.	**चिता चिन्तासम ह्युक्ता बिन्दुमात्र विशेषतः।** **सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥**	चिता और चिंता में मात्र एक बिन्दु (अनुस्वार) का ही फर्क है किन्तु दोनों ही एक समान है, जो जीते जी जलाता है वह चिंता है और जो मरने के बाद)निर्जीव) को जलाता है वह चिता है।
200.	**चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति ।** **तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत ॥**	चिंता और उद्वेग में संयम रख कर और ऐसा मान कर कि श्रीहरि जो जो भी करेंगे वह उनकी लीला मात्र है, चिंता को शीघ्र त्याग दें ।
201.	**चिन्तनीया हि विपदां आदावेव प्रतिक्रिया।** **न कूपखननं युक्तं प्रदीप्त वान्हिना गृहे॥**	जिस प्रकार से घर में आग लग जाने पर कुँआ खोदना आरम्भ करना युक्तिपूर्ण)सही) कार्य नहीं है उसी प्रकार से विपत्ति के आ जाने पर चिन्तित होना भी उपयुक्त कार्य नहीं है।

202.	**चेतोदर्पणमार्जनं भव महादावाग्नि निर्वापणम्** **श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधू जीवनम्।** **आनंदाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्** **सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्॥**	चित्त रूपी दर्पण को स्वच्छ करने वाले, भव रूपी महान अग्नि को शांत करने वाले, चन्द्र किरणों के समान श्रेष्ठ, विद्या रूपी वधु के जीवन स्वरुप, आनंद सागर में वृद्धि करने वाले, प्रत्येक शब्द में पूर्ण अमृत समान सरस,पवित्र करने वाले श्री कृष्ण का नाम कीर्तन करें।
203.	**छायामन्यस्य कुर्वन्ति स्वयं तिष्टन्ति चातपे।** **फलान्यपि परार्थाय वृक्षाः सत्पुरुष इव॥**	वृक्ष स्वयं सूर्य के प्रखर ताप को सहन करके दूसरों को छाया प्रदान करते हैं तथा उनके फल भी दूसरों के उपयोग के लिए होते हैं, वृक्ष के समान सत्पुरुष भला कौन है?
204.	**जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं** **मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।** **चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं** **सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥** **नीतिशतकम्**	उत्तम मित्रों का साथ बुद्धि की जड़ता को हर लेता है। हमारी वाणी में सत्यता आती है। हमारा मान-सम्मान बढ़ता है। हम पापकर्म से मुक्त होते हैं। हमारा मन प्रसन्न होता है, और हमारा यश चारों दिशाओं में फैलता है। उत्तम और श्रेष्ठ मित्रों की संगति से मानव का हर प्रकार से कल्याण होता है।
205.	**जातिमात्रेण किं कश्चिद् वध्यते पूज्यते क्वचित् ।** **व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥**	कोई भी व्यक्ति जातिमात्र ही से मारने वा पूजने लायक नहीं होता है, किन्तु उनका व्यवहार देख कर ही उसे मारना या पूजना चाहिए ॥
206.	**जानीयात्प्रेषणेभृत्यान् बान्धवान्व्यसनाऽऽगमे।** **मित्रं याऽऽपत्तिकालेषु भार्यां च विभवक्षये ॥**	किसी महत्वपूर्ण कार्य पर भेज़ते समय सेवक की पहचान होती है । दुःख के समय में बन्धु-बान्धवों की, विपत्ति के समय मित्र की तथा धन नष्ट हो जाने पर पत्नी की परीक्षा होती है ।

207.	जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ।। अप्रतिपूजिताः जामयः यानि गेहानि शपन्ति, तानि कृत्या आहतानि इव समन्ततः विनश्यन्ति ।	जिन घरों में पारिवारिक स्त्रियां निरादर-तिरस्कार के कारण असंतुष्ट रहते हुए शाप देती हैं, वे घर कृत्याओं (जादू-टोने जैसी क्रियाओं अदृश्य शक्ति) के द्वारा सभी प्रकार से बरबाद से हो जाते हैं ।
208.	जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् । मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥	धर्महीन मनुष्य को जिंदा होने के बावजुद में मृत समजता हूँ । धर्मयुक्त इन्सान मर कर भी दीर्घायु रहेता है उस में संदेह नहीं ।
209.	ज्ञानं भारः क्रियां विना।	आचरण सद्व्यवहार के बिना ज्ञान व्यर्थ है। आचरण रूपी कसौटी पर ही ज्ञान की सच्चाई का पता चलता है।
210.	ज्ञानं यस्य समीपे स्यात् मदस्तस्मिन्न विद्यते। यस्य पार्श्वे भवेत् गर्वःज्ञानं तस्य कुतो भवेत्।।	जिसके पास ज्ञान है। वह अहंकार नहीं रख सकता। उसके पास अहंकार है। उसे कहां से ज्ञान है?
211.	ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥ अथर्ववेद ३	श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरेको प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझेको खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्तजनोंसे सदा मिले हुए रहो ॥
212.	ज्येष्ठत्वं जन्मना नैव गुणैः ज्येष्ठत्वम् उच्यते । गुणात् गुरुत्वम् आयाति दुग्धं दधि घृतं क्रमात्।। चाणक्य नीति	महानता मनुष्य को मात्र जन्म लेने से नहीं मिलती है। महानता मनुष्य को उसके गुणों से प्राप्त होती है। जैसे दुग्ध से गुरूतर होकर क्रमशः दधि और पुनः दधि से घी बनता है ।

213.	**तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्प नैपुनम॥**	कर्म, सत्कर्म एवम दुष्कर्म ये कर्म के ही रूप हैं। परन्तु वह कर्म जिसे करने से किसी भी प्रकार का बंधन या भय नहीं हो, विद्या वह जो आपके किसी भी निर्णय में लालच, भेदभाव या न्याय-अन्याय का प्रभाव नहीं हो। कर्म और विद्या मुक्ति का साधन हों। विद्या कौशल को और कर्म आपके बन्धन को ही प्रदर्शित करेंगे।
214.	**तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते । उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥**	यज्ञ, अध्ययन, तप, दान, सत्य, धृति, क्षमा, लोभ और धर्मोपार्जन के मार्ग हैं।वहाँ पूर्वगण न केवल धर्म के लिए, बल्कि प्रदर्शन और अन्य बाह्य प्रयोजनों के लिए भी मनुष्य भक्ति करते हैं। अपरगणे स्थित गुण तो महापुरुषों और सन्तजन में ही दिखाई देते हैं।
215.	**तत्र मित्र ! न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् । ऋणदाता च वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥**	हे मित्र- जहाँ ऋणदाता धनी, वैद्य, श्रोत्रिय (वैदिक विद्वान्) और जल से पूर्ण नदी, ये चार चीज़े नहीं हों, वहाँ कभी नहीं रहना चाहिए
216.	**तत्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् । उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ।।**	सभी जीवों के आत्मा के रहस्य को जानने वाले, सभी कर्म के योग को जानने वाले , मनुष्यों में उपाय जानने वाले व्यक्ति को पंडित कहा गया है।
217.	**तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा। लोकवच्चेत्स्थितिर्मे स्यात्किं स्यादिति विचारय॥**	उसी प्रकार इस शरीर के साथ नहीं करना चाहिए अन्यथा प्रभु प्रसन्न नहीं होंगे। यह विचार करो कि यदि इस लौकिक दृष्टि से मुझे परखा जाए तो मेरी स्थिति क्या होगी।

218.	**तर्कविहीनो वैद्यः लक्षण हीनश्च पण्डितो लोके । भावविहीनो धर्मो नूनं हस्यन्ते त्रीण्यपि ॥**	तर्कविहीन वैद्य, लक्षणविहीन पंडित, और भावरहित धर्म – ये अवश्य हि जगत में हसी का पात्र बनते हैं ।
219.	**तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। तस्मात् भूतिकामैः नरैः एताः (जामयः) नित्यं सत्कारेषु उत्सवेषु च भूषणात् आच्छादन-अशनैः सदा पूज्याः। मनुस्मृति 3**	अतः ऐश्वर्य एवं उन्नति चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे पारिवारिक संस्कार-कार्यों एवं विभिन्न उत्सवों के अवसरों पर पारिवार की स्त्रियों को आभूषण, वस्त्र तथा सुस्वादु भोजन आदि प्रदान करके आदर-सम्मान व्यक्त करें ।
220.	**तावद भयस्य भेतव्यं यावद् भयमागतम्। आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद्यथोचितम्।।**	जब तक भय का कारण मौजूद न हो, तब तक उससे डरना चाहिए, लेकिन भय की उपस्थिति को देखते हुए उचित उपाय करने चाहिए।
221.	**तावद् भयस्य भेतव्यं यावद् भयमनागतम् । आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम् ॥**	जब तक विपत्ति नहीं आये तभी तक उससे डरना चाहिये। पर यदि विपत्ति आ ही पड़े, तो मनुष्य को निर्भय होकर उसका यथोचित प्रतीकार करना चाहिए ॥
222.	**तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम् । सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते ॥**	पुण्यात्मा पशुपक्षियों का भी परस्पर में विश्वास देखा गया है, क्यों कि पुण्यवान् सज्जनों का स्वभाव साधुशील (सदाचारी) होने के कारण किसी भी योनि (जन्म) में नहीं बदलता है ॥
223.	**तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥**	स्वयं को तृण से भी छोटा समझते हुए, वृक्ष जैसे सहिष्णु रहते हुए, कोई अभिमान न करते हुए और दूसरों का सम्मान करते हुए सदा भगवान् श्री हरि विष्णु का भजन करना चाहिए।

224.	**तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ। नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ॥ तुलसीदास**	अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा और बुरी संगति से बुरा हो जाता है।जो लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है, वही तलवार और तीर में लगने से जीवों का प्राण घातक हो जाता है।
225.	**तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम्। जिताक्षस्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥**	ब्रह्मज्ञानीके लिये स्वर्ग, वीरके लिये जीवन, जितेन्द्रियके लिये नारी और निर्लोभके लिये समस्त संसार तिनकेके बराबर है ॥
226.	**तृणानि नोन्मूलयति प्रभन्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः। स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं महान्महत्स्वेव करोति विक्रम॥**	जिस प्रकार से प्रचण्ड आंधी बड़े बड़े वृक्षों को जड़ से उखाड़ देता है किन्तु छोटे से तृण को नहीं उखाड़ता उसी प्रकार से पराक्रमीजन अपने बराबरी के लोगों पर ही पराक्रम प्रदर्शित करते हैं और निर्बलों पर दया करते हैं।
227.	**तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥**	बिछाने के लिए और बैठने के लिए पुआल आदि घास फूस, रहने को स्थान, जल- ये तीन चीज़ और चौथा मीठा वचन, इन चार चीज़ों की कमी तो सज्जनों के घर में कभी भी नहीं होती है । अर्थात् कुछ भी घर में देने को न हो तो भी इन चार वस्तुओं से ही अतिथि का सत्कार करना चाहिये ॥
228.	**त्यक्त्वा धर्मप्रदां वाचं परुषां योऽभ्युदीरयेत्। परित्यज्य फलं पक्कं भुङ्क्तेऽपक्कं विमूढधीः ।।**	जो धर्मप्रद वाणी को छोड़कर कठोर वाणी बोले, वह मूर्ख (मानो) पके हुए फल को छोड़कर कच्चा फल खाता है।

229.	**तैलाद् रक्षेत् जलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिल बंधनात्।** **मूर्ख हस्ते न दातव्यं एवं वदति पुस्तकम्॥**	एक पुस्तक कहता है कि मेरी तेल से रक्षा करो (तेल पुस्तक में दाग छोड़ देता है), मेरी जल से रक्षा करो (पानी पुस्तक को नष्ट कर देता है), मेरी शिथिल बंधन से रक्षा करो (ठीक से बंधे न होने पर पुस्तक के पृष्ठ बिखर जाते हैं, मुझे कभी किसी मूर्ख के हाथों में मत सौंपो।
230.	**तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।** **येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥**	जिसने आशा को लात मार कर नैराश्य (निराशा) का ही अवलम्बन किया है, उसीने सब शास्त्रों को ठीक २ पढा है, और उसी ने शास्त्रों को ठीक२ सुना है और उसी ने सब कुछ कर्त्तव्य कार्य किया है ॥
231.	**त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।** **कुरु पुण्यमहोरात्रं नित्यमनित्यताम्॥**	खलका सङ्ग छोड़, साधुकी सङ्गति कर, दिनरात पुण्य किया कर, संसार अनित्य है-इस प्रकार निरन्तर विचार करता रह ॥
232.	**त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च। तमर्शवन्तं पुराश्रयन्ति अर्थो हि लोके मनुषस्य बन्धुः॥**	मनुष्य के धनहीन हो जाने पर पत्नी, पुत्र, मित्र, निकट सम्बन्धी आदि सभी उसका त्याग कर देते हैं और उसके धनवान बन जाने पर वे सभी पुनः उसके आश्रय में आ जाते हैं। इस लोक में धन ही मनुष्य का बन्धु है।
233.	**त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।** **अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ॥**	उत्कट पापों व पुण्यों का फल इसी लोक में तीन वर्ष में, या तीन महीने में, या तीन पक्ष में, या तीन दिन के भीतर ही मनुष्य को मिल जाता है ॥
234.	**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।** **कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ।।**	नरक के तीन द्वार है- काम, क्रोध और लोभ। इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

235.	**ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।** **भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।।**	लेना, देना, खाना, खिलाना, रहस्य बताना और उन्हें सुनना ये सभी 6 प्रेम के लक्षण है।
236.	**दयाहीनं निष्फलं स्यान्नास्ति धर्मस्तु तत्र हि।** **एते वेदा अवेदाः स्यु र्दया यत्र न विद्यते।।**	बिना दया के किये गये काम में कोई फल नहीं मिलता, ऐसे काम में धर्म नहीं होता जहां दया नहीं होती। वहां वेद भी अवेद बन जाते हैं।
237.	**दरिद नाशन दान, शील दुर्गतिहिं नाशियत।** **बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशत है भावना॥** **[चाणक्य]**	दान से दरिद्रता या गरीबी का नाश होता है। शील या व्यवहार दुखों को दूर करता है। बुद्धि अज्ञानता को नष्ट कर देती है। शुभ विचार सभी प्रकार के भय से मुक्ति दिलाते हैं।
238.	**दरिद्रता धीरतया विराजते कुरूपता शीलतया विराजते। कुभोजनं चोष्णतया विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।।**	दरिद्रता धीरजसे, कुरूपता अच्छे स्वभावसे, कुभोजन भी गर्म रहनेसे और पुराना कपड़ा भी स्वच्छ होनेसे शोभा पाता है ॥
239.	**दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।** **व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥**	हे कौन्तेय! गरीबों को धन दो, धनवानों को धन मत दो । रोगी को दवा की जरूरत होती है। नीरोगी को दवा की कोई जरूरत नहीं ।
240.	**दर्शने स्पर्शणे वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।** **यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते॥**	यदि किसी को देखने से या स्पर्श करने से, सुनने से या बात करने से हृदय द्रवित हो तो इसे स्नेह कहा जाता है ।
241.	**दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने ,** **प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम्।** **शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता ,** **ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥**	आत्मीय जनोंपर उदारता, दूसरोंपर दया, दुष्टोंसे शठता, साधुओंसे प्रीति, राजाओंसे नीति, विद्वानोंसे सरलता, शत्रुओंपर वीरता, बड़ोंपर क्षमा और स्त्रियोंसे चालाकी रखना-इन सब गुणोंमें जो निपुण हैं, उन्हींपर लोकमर्यादा निर्भर रहती है ॥

242.	**दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणि । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥**	दान उसी को देना चाहिए, जिससे कोई उपकार नहीं कराना हो, उचित जगह, उपयुक्त समय और उपयुक्त व्यक्ति को दिया हुआ दान सात्विक दान होता है।
243.	**दाददो दुद्दुदुद्दादि दादादो दुददीददोः। दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः॥**	दान देने वाले, खलों को उपताप देने वाले, शुद्धि देने वाले, दुष्ट्मर्दक भुजाओं वाले, दानी तथा अदानी दोनों को दान देने वाले, राक्षसों का खंडन करने वाले ने, शत्रु के विरुद्ध शस्त्र को उठाया।
244.	**दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं वशः। विद्यायामर्थलाभे च मातुरूच्चार एव सः।।**	जिस मनुष्य की कीर्ति दान देने में, तपस्या में, वीरता में, विद्या अर्जित करने में नहीं फैलती, वह मनुष्य केवल अपनी माता के मल के समान होता है।
245.	**दाने तपसि शौर्ये च विज्ञाने विनये नये। विस्मयो न हि कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा।।**	दान में, तपस्या में, बल में, विशेष ज्ञान में, नम्रता में और नीति में निश्चय ही आश्चर्य नहीं करना चाहिए। पृथ्वी रत्नों से भरी हुई है। यानी धरती ऐसे कई रत्नों से भरी पड़ी है।
246.	**दानेन तुल्यं सुहृदास्ति नान्यो लोभाच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम्। विभूषणं शीलसमं न चान्यत् सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्॥**	इस पृथ्वी पर दान के समान अन्य कोई सुहृद नहीं है लोभ के समान कोई शत्रु नहीं है, शील के समान कोई आभूषण नहीं है और संतोष के समान कोई धन नहीं है।
247.	**दानेन तुल्यो विधिरास्ति नान्यो लोभोच नान्योस्ति रिपुः पृथिव्यां। विभूषणं शीलसमं च नान्यत् सन्तोषतुल्यं धमस्ति नान्य्॥**	दान के समान अन्य कोई अच्छा कर्म नहीं है, लोभ के समान इस पृथ्वी पर कोई अन्य शत्रु नहीं है, शील के समान कोई गहना नहीं है और सन्तोष के समान कोई धन नहीं है।

248.	**दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन। मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन॥**	दान देनेसे ही हाथकी शोभा है, गहनोंसे नहीं, स्नान करनेसे ही शुद्धि होती है, चन्दनसे नहीं; सम्मानसे तृप्ति होती है, केवल भोजनसे नहीं और ज्ञानसे ही मुक्ति होती है, केवल वेषभूषा धारण करनेसे नहीं ॥
249.	**दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते निःसत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते । निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥**	दरिद्रता से मनुष्य लज्जित सा हो जाता है । लज्जित मनुष्य तेज से हीन हो जाता है! तेजहीन मनुष्य का सर्वत्र निरादर होता है। अनादर से खेद होता है । खिन्न मनुष्य शोक से व्याप्त हो जाता है । शोक ग्रस्त मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिहीन मनुष्य का नाश निश्चित है। अतः दरिद्रता ही सब आपत्तियों का आधार स्थान है ॥
250.	**दारिद्र्यान्मरणाद् वापि दारिद्र्यमवरं स्मृतम् । अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुःसहम् ॥**	दरिद्रता और मरना इन दोनों में से मरना ही अच्छा है, क्यों कि मरने में तो थोड़ी देर ही क्लेश है, पर दरिद्रता में तो सदा कष्ट ही कष्ट है ॥
251.	**दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् । न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ॥**	जिनका आयु क्षीण होगया, वे दीपक के बुझने वाले गन्ध को नहीं सूंघते। हितैषी के बातों को नहीं सुनते। और अरुन्धती नक्षत्र को नहीं देखते ॥
252.	**दीर्घा वै जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम् । दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम् ॥**	जो रात्री भर जगा हो, उसे रात्री बहुत बड़ी प्रतीत होती है। जो चलकर थक गया हो, उसको केवल एक योजन की दुरी भी बहुत दूर लगती है।उसी प्रकार जिन्हें सद्धर्म (उत्तम धर्म) का ज्ञान नही है,उन्हें जीवन बहुत दीर्घ लगता है ।

253.	दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यालंकृतो सन । मणिना भूषितो सर्पःकिमसौ न भयंकरः।	दुष्ट व्यक्ति यदि विद्या से सुशोभित भी हो अर्थात वह विद्यावान भी हो तो भी उसका परित्याग कर देना चाहिए। जैसे मणि से सुशोभित सर्प क्या भयंकर नहीं होता?
254.	दुर्जनः स्वस्वभावेन परकार्ये विनश्यति। नोदर तृप्तिमायाती मूषकः वस्त्रभक्षकः।।	दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव ही दूसरे के कार्य बिगाड़ने का होता है। वस्त्रों को काटने वाला चूहा पेट भरने के लिए कपड़े नहीं कटता।
255.	दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥	दुष्ट व्यक्ति विद्यासे भूषित होनेपर भी त्यागने योग्य है; जिस सर्पके मस्तकपर मणि होती है, वह क्या भयङ्कर नहीं होता? ॥
256.	दुर्जनः प्रियवादीति नैतद्विश्वासकारणम्। मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम्॥	दुर्जन व्यक्ति यदि प्रिय (मधुर लगने वाली) वाणी भी बोले तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे जबान पर (प्रिय वाणी रूपी) मधु होने पर भी हृदय में हलाहल ही भरा होता है।
257.	दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्। उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम्॥	दुर्जन, जो कि कोयले के समान होते हैं, से प्रीति कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि कोयला यदि गरम हो तो जला देता है और शीतल होने पर भी अंग को काला कर देता है।
258.	दुर्लभं प्राकृतं मित्रं दुर्लभः क्षेमकृत् सुतः। दुर्लभा सदृशी भार्या दुर्लभः स्वजनः प्रियः॥	स्वाभाविक मित्र, हितकारी पुत्र , मनके अनुकूल स्त्री और प्रियतम कुटुम्बी, मिलना दुर्लभ है॥
259.	दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः। ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥	दुष्ट पत्नी, शठ मित्र, उत्तर देने वाला सेवक तथा सांप वाले घर में रहना, ये मृत्यु के कारण हैं इसमें सन्देह नहीं करनी चाहिए ।

260.	**दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः । यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥**	जो व्यक्ति हृदय में रहता है, वह दूर होने पर भी दूर नहीं है । जो हृदय में नहीं रहता वह समीप रहने पर भी दूर है।
261.	**दूरीकरोति दुरितं , विमलीकरोति चेतश्चिरन्तनमघं, चुलुकीकरोति भूतेषु किञ्च करुणां, बहुलीकरोति सत्सङ्गतिः, कथय किं न करोति पुंसाम्।**	जो दूरियों को समाप्त करता है, जो मन की शुद्धता को लाता है, जो चिरंतन पापों को नष्ट करता है, जो प्राणियों में करुणा को बढ़ाता है, वह सज्जनों का संग कैसे नहीं करता?
262.	**दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥**	देख-भालकर पैर रखना चाहिये, कपड़े से छानकर पानी पीना चाहिये, सच्ची बात कहनी चाहिये और जो मनको पवित्र जान पड़े वह आचरण करना चाहिये।
263.	**देवानां नन्दनो देवो नोदनो वेदनिंदिनां। दिवं दुदाव नादेन दाने दानवनंदिनः॥**	वह परमात्मा जो दूसरे देवों को सुख प्रदान करता है और जो वेदों को नहीं मानते उनको कष्ट प्रदान करता है। वह स्वर्ग को ध्वनि नाद से भर देता है, जिस तरह के नाद से हिरण्यकशिपु को मारा था।
264.	**देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥**	देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, ज्योतिषी, औषध और गुरुमें जिसकी जैसी भावना रहती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥
265.	**देवो रुष्टे गुरुस्त्राता गुरो रुष्टे न कश्चनः। गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता न संशयः।।**	भाग्य रूठ जाये तो गुरू रक्षा करता है। गुरू रूठ जाये तो कोई नहीं होता। गुरू ही रक्षक है, गुरू ही शिक्षक है, इसमें कोई संदेह नहीं।

266.	**देशवंशजनैकोऽपि कायवाक्चेतसां चयै।** **येन नोपकृतः पुंसा तस्य जन्म निरर्थकम्।।**	यदि मनुष्य तन, वाणी और मन से या इनमें से किसी एक से देश या अपने वंश का एक भी उपकार नहीं करता है, तो ऐसे परोपकारी व्यक्ति का जन्म लेना व्यर्थ है।
267.	**दैवे पुरूषकारे चा स्थितमस्य बलाबलम्।** **दैवं पुरूषकारेण दुर्लभं ह्युपहन्यते।।**	भाग्य और प्रयास में इसकी ताकत स्पष्ट है, कमजोर भाग्य आदमी से हार जाता है।
268.	**दयूतं पुस्तकवाद्ये च नाटकेषु च सक्तिता ।** **स्त्रियस्तन्द्रा च निन्द्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥**	जुआ, वाद्य, नाट्य (कथा/फिल्म) में आसक्ति, स्त्री (या पुरुष), तंद्रा, और निंद्रा – ये छे विद्या में विघ्नरुप होते हैं ।
269.	**द्रवत्वात् सर्वलोहानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम् ।** **भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां सङ्गतं दर्शनात् सताम् ॥**	सब धातुओंका परस्पर मेल गलाने से ही होता है, पशुपक्षियों का मेल किसी निमित्त से ही होता है, मूर्खों का मेल भय और लोभ से ही होता है, परन्तु सज्जनों का मेल तो केवल दर्शनमात्र से ही हो जाता है ॥
270.	**द्वौ अम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।** **धनवन्तम् अदातारम् दरिद्रं च अतपस्विनम्॥**	जो धनवान होकर भी दान नहीं करता और जो दरिद्र होकर भी मेहनत नहीं करता, इन दोनों को गले में बडा सा पत्थर बाँध कर पानी में डूबा देना चाहिए।
271.	**धनधान्यप्रयोगेषु विद्यायाः संग्रहेषु च।** **आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।।**	उदार दृष्टिकोण वाला व्यक्ति अर्थात् उदार प्रवृत्ति वाला व्यक्ति खाद्यान्न के उपयोग में और ज्ञान के संचय में, भोजन और व्यवहार में खुश हो जाता है।

272.	धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माजितेन्द्रियः । सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम् ॥	जो मनुष्य धन का लोभी, असंतोषी, चञ्चल चित्तवाला, इन्द्रियों के वश में रहनेवाला है, तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, ऐसे मनुष्य को सब प्रकार की आपत्तियों आकर घेर लेती हैं ॥
273.	धनवान् बलवाँल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा । प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते ॥	संसार में सभी जगह, सदा ही, धनी लोग ही बलवान् गिने जाते हैं । राजा लोग भी धन ही के कारण सबके स्वामी बने रहते हैं ॥
274.	धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत। सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।	विद्वान को अपने धन और जीवन का बलिदान दान के लिए ही करना चाहिए, जब धन और जीवन का विनाश निश्चित हो, तो दान आदि जैसे अच्छे कार्यों में ही उनका बलिदान करना श्रेयस्कर है।
275.	धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे भार्या गृहद्वारी जनः स्मशाने।देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकाः	धन-सम्पत्ति धरती में गढ़े रह जाते हैं, घोड़े अस्तबल में बँधे रह जाते हैं, प्रेम करने वाले घर में रह जाते हैं, कुछ लोग अंत्येष्टि हेतु श्मशान घाट तक जाते हैं और मृत शरीर चिता में रह जाता है। केवल कर्म ही प्राणी का अगले जन्मों में साथ देते आहें।
276.	धनाशा जीविताशा च गुर्वी प्राणभृतां सदा । वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥	सभी प्राणियों को धन की आशा और जीवन की आशा (लालसा) स्वभावतः अधिक होती है । परन्तु वृद्ध पुरुष को तो अपनी युवती स्त्री अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी होती है ॥
277.	धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यश्च पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं कारयेत् ॥	जहाँ धनी, वेद जाननेवाला ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य-ये पाँचों न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ।

278.	धन्या बधिरा अन्धाः स एव जीवन्ति मानुषे लोके । न श्रृण्वन्ति पिशुनजनं खलानाम् ऋद्धिं न प्रेक्षन्ते	धन्य हैं वे लोग जो इस संसार में बहरे और अंधे के रूप में रहते हैं, क्योंकि उन्हें निंदकों के दुर्भावनापूर्ण शब्दों को नहीं सुनना या बुराई की समृद्धि को नहीं देखना पड़ता है।
279.	धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।	जो व्यक्ति धर्म का नाश करता है, उसका नाश धर्म कर देता है, और वहीं जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी धर्म भी रक्षा करता है।
280.	धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम्। सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति॥	धर्म, धन और धान्य, ये सब गुरु के वचन औषधि के समान हैं। इन्हें अच्छी तरह से ग्रहण करना चाहिए,अन्यथा मानव जीवन नष्ट होता है
281.	धर्मार्थ काममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥	जिस व्यक्ति ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए आवश्यक ज्ञान संपादन नही किया, उसकी पूर्ति भी नहीं किया. उसका जन्म निरर्थक है जैसे, बकरी के गले में देखने में स्तन जैसे थैली अंश ।
282.	धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः । तान् निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् ॥	जीवन चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पूरा करने के लिए आवश्यक तत्व है। जो व्यक्ति अपने जीवन से वंचित होता है, वह सब कुछ खो देता है, या जो व्यक्ति जीवन को बचाता है, वह सब कुछ बचा लेता है।
283.	धान्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम् । लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ॥	अन्नों में उत्तम निपुणता है। धनों में उत्तम शास्त्र-ज्ञान है। लाभों में उत्तम नीरोग (उत्तम स्वास्थ्य) है। सुखों में उत्तम सन्तोष है।
284.	धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा। मित्राणाम् चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः।।	धैर्य, मन पर अंकुश, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, मधुर वाणी और मित्र से द्रोह न करना ये सात चीजें लक्ष्मी को बढ़ाने वाली हैं।

285.	**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥**	धर्म के दस लक्षण हैं - धैर्य, क्षमा, आत्म-नियंत्रण, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना
286.	**न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम। यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते।।**	किसी भी समूह का नेता नहीं होना चाहिए, क्योंकि यदि कार्य सफल होता है, तो सभी को समान रूप से लाभ होता है, और यदि कार्य विफल हो जाता है, तो नेता की हत्या कर दी जाती है।
287.	**न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः व्यवहारेण अर्थतस्तु च निबध्यन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा ॥"स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते"**	स्वभाव से तो न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु ही है । शत्रुता और मित्रता तो व्यवहार(कार्य)से, धन के लिए ही होती है ॥ अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अधिकाधिक व्यवहार कुशलता और विनम्र स्वभाव जैसे सद्गुणों का संचयन करे।
288.	**न तत् मातापितरौ तत् कुर्यातां अन्ये चापि च ज्ञातिकाः। सम्यक्प्रणिहितं चित्तं श्रेयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥**	जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, और न ही अन्य भाई बंधु , उससे कई अधिक सही मार्ग पर लगा चित्त(मन) कर सकता है।
289.	**न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं न अपुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥**	न मैं राज्य की इच्छा रखता हूँ, न स्वर्ग या मोक्ष की ही, अभिलाषा है कि दुःख से पीड़ित सभी प्राणियों के दुःख का नाश हो जाये
290.	**न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत। यं तु रक्षितमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्ति तम्।।**	देवता कभी मनुष्यों की रक्षा चरवाहों की भांति डंडा लेकर नहीं करते। जिसकी देवता रक्षा करना चाहते है, उसे उसकी रक्षा के लिए स्वरक्षा के लिए सद्बुद्धि प्रदान करते है।

291.	**न दैवमपि सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः । अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ॥**	भाग्य अनुकूल नहीं, ऐसा सोचकर अपने प्रयासों को नहीं छोड़ना चाहिए। बिना परिश्रम किए कौन तिलों से तेल निकाल सकता है?
292.	**न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं, न चापि वेदाध्यनं दुरात्मनः। स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते, यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।।**	शास्त्रों का अध्ययन या वेदों का अध्ययन दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन का कारण नहीं हो सकता, यहाँ प्रकृति की प्रधानता उसी तरह बनी हुई है, जैसे कड़वी, कसैले युक्त कई सूखी घास खाने के बाद भी गाय का दूध स्वभाव से मीठा होता है। आदि।
293.	**न धैर्येण विना लक्ष्मी-र्न शौर्येण विना जयः। न ज्ञानेन विना मोक्षो न दानेन विना यशः॥**	मनुष्य को धैर्य के बिना धन, वीरता के बिना विजय, ज्ञान के बिना मोक्ष और दान के बिना यश प्राप्त नहीं होता।
294.	**न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु। नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥**	जो मनुष्य युद्ध में अपने से दुर्बल मनुष्य के हाथों घायल हुआ है, वह सच्चा मनुष्य नहीं है। ऐसे ही अपने से दुर्बल को घायल करता हैं, वो भी मनुष्य नहीं हैं। घायल मनुष्य का स्वामी यदि घायल न हुआ हो तो ऐसे मनुष्य को घायल नहीं कहते और घायल मनुष्य को घायल करें वो भी मनुष्य नहीं है।
295.	**न भूतपूर्वं न कदापि वार्ता हेम्नः कुरङ्गो कदापि न दृष्टः । तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ।।**	न तो ऐसा पहले कभी हुआ था और न किसी ने सुना था , और सोने का मृग न कभी किसी ने देखा था , परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने लालच वश इसे सत्य मान लिया था ।सचमुच जब विनाशकाल आता है तो मनुष्य की बुद्धि भृष्ट हो जाती है ।

296.	**न मुक्ताभि र्न माणिक्यैः न वस्त्रै र्न परिच्छदैः । अलङ्क्रियेत शीलेन केवलेन हि मानवः ॥**	मोती, माणेक, वस्त्र या पहनावे से नहीं, पर केवल शील से हि इन्सान विभूषित होता है ।
297.	**न योजनशतं दूरं वाह्यमानस्य तृष्णया । सन्तुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः ॥**	जो मनुष्य तृष्णा के वश में हो रहा है, उसके लिये तो १०० सौ योजन (चार सौ कोश) भी दूर नहीं है, पर जो प्राणी सन्तुष्ट है, उसको तो हाथ में आए हुए धन पर भी आदर नहीं होता है, किन्तु उसमें भी उसे उपेक्षा ही होती है ॥
298.	**न लज्जा न विनीतत्वं न दाक्षिण्यं न भीरुता। प्रार्थनाभाव एवैकं सतीत्वे कारणं स्त्रियाः ॥**	स्त्री के सती होने का कारणा तो लज्जा है, न नम्रता है, न दान-शीलता है, और न डर ही है, किन्तु इसमें यदि कोई कारण है, तो वह केवल प्रार्थना करने वाले पुरुष का पास में नहीं होना ही है ॥
299.	**न लोभेन समं दुःखं न सन्तोषात् परं सुखम्।**	लोभ से बढ़कर कोई दुःख नहीं है तथा संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है। तात्पर्य यह कि लोभ के कारण व्यक्ति अनादर का पात्र हो जाता है, लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जबकि संतोषी व्यक्ति का जीवन शांतिमय होता है। उसे हर कोई सम्मान की दृष्टि से देखता है, क्योंकि उसका स्वाभिमान कायम रहता है।
300.	**न विना परवादेन रमते दुर्जनोजनः । काकःसर्वरसान भुक्ते विनामध्यम न तृप्यति।।**	लोगों की निंदा किये बिना दुष्ट व्यक्तियों को आनंद नहीं आता। जैसे कौवा सब रसों का भोग करता है। परंतु गंदगी के बिना उसकी तृप्ति नहीं होती।

301.	**न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद् भयमभ्येति नापरीक्ष्य च विश्वसेत्।।**	जो विश्वसनीय नहीं है, उस पर कभी भी विश्वास न करें। परन्तु जो विश्वासपात्र है, उस पर आंख मूंदकर भरोसा न करें। अधिक विश्वास से भय उत्पन्न होता है। इसलिए बिना परीक्षा लिए किसी पर भी विश्वास न करें।
302.	**न संशयमनारूह्य नरो भद्राणि पश्यति। संशयं पुनरारूह्य यदि जीवति पश्यति।।**	मनुष्य स्वयं को खतरे में डाले बिना विशिष्ट लाभ प्राप्त नहीं कर सकता, यदि वह खतरे से बच जाता है, तो वह उस लाभ का सुख भोगता है।
303.	**न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। धर्मो न वै यत्र च नास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलनानुविद्धम्॥**	जिसमें वृद्ध न हों वह सभा नहीं, जो धर्मोपदेश नहीं करते वे वृद्ध नहीं, जिसमें सत्य न हो वह धर्म नहीं, जो छलयुक्त हो वह सत्य सत्य नहीं ।
304.	**न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते ।गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥**	स्त्रियों का न तो कोई प्रिय है और न उनका कोई अप्रिय ही है । किन्तु जैसे गाय वन में नया नया तृण (घास) ढूँढती रहती हैं, (वैसे ही स्त्रियां भी नये नये पुरुषों को खोजा करती हैं) ॥
305.	**न स्थिरं क्षणमप्येकं उदकं तु यथोर्मिभिः । वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥**	जब हवा बहती है, तो पानी क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता है। हमारा मन ऐसा ही है, यह प्रत्येक क्षण बदलता है, यह विश्वसनीय नहीं है।
306.	**न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान् नरः। एतदेवातिपाण्डित्यं यत्स्वल्पाद् भूरिरक्षणम्।।**	थोड़े के लिए अधिक का नाश न करे, बुद्धिमत्ता इसी में है। बल्कि थोड़े को छोड़कर अधिक की रक्षा करे ।

307.	**न हि ज्ञानसमं लोके पवित्रं चान्यसाधनं। विज्ञानं सर्वलोकानामु-त्कर्षाय स्मृतं खलु॥**	इस लोक में ज्ञान-शिक्षा के समान पवित्र दूसरा कोई साधन (धन) नहीं है, शास्त्रों में विज्ञान को समस्त लोकों की प्रगति के लिए निश्चित किया गया है।
308.	**न ही कश्चित् विजानाति किं कस्य श्वो भविष्यति। अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान्॥**	कल क्या होगा यह कोई नहीं जानता है इसलिए कल के करने योग्य कार्य को आज कर लेने वाला ही बुद्धिमान है ।
309.	**नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्ककाष्ठश्च मूर्खश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च कदाचन॥**	जिस प्रकार से फलों से लदी हुई वृक्ष की डाल झुक जाती है उसी प्रकार से गुणीजन सदैव विनम्र होते हैं किन्तु मूर्ख सूखी लकड़ी के समान होता है जो कभी काटने-प्रताड़ित करने पर नहीं झुकता।
310.	**नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा। शीलं च दुर्लभं तत्र विनयस्तत्र सुदुर्लभःपृथ्वी॥**	मनुष्य जन्म का मिलना दुर्लभ है, विद्या युक्त मनुष्य मिलना और दुर्लभ है, उनमें भी चरित्रवान मनुष्य मिलना दुर्लभ है और उनमें भी विनयी मनुष्य मिलना और दुर्लभ है।
311.	**नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभारणं गुनः। गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा॥**	मनुष्य का अलंकार (गहना) रूप होता है, रूप का अलंकार (गहना) गुण होता है, गुण का अलंकार (गहना) ज्ञान होता है और ज्ञान का अलंकार (गहना) क्षमा होता है।
312.	**नलिनीदलगतजलमतितरलम् तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्। विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोक शोकहतं च समस्तम् ॥**	जीवन कमल-पत्र पर पड़ी हुई पानी की बूंदों के समान अनिश्चित एवं अल्प है। यह समझ लो कि समस्त विश्व रोग, अहंकार और दु:ख में डूबा हुआ है ।

313.	**नवनीतं घृतं दुग्धं दधि तक्रं च पञ्चमम् । सर्वमेककुलाज्जाता मूल्यं सर्वस्य वै पृथक् ॥**	दूध,दही,मखन,घी और पांचवीं छाछ, ये सब एक ही कुल मे जन्मे है, कीमत अलग अलग है (श्रेष्ठता, कर्म से प्राप्त होती है)
314.	**नागो भाति मदेन कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी, शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम्। वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैनद्यः सभा पण्डितैः, सत्पुत्रेण कुलं नृपेण वसुधा लोकत्रयं विष्णुना॥**	गजराज मद से, जल कमलों से, रात्रि पूर्ण चन्द्र से, स्त्री शील से, घोड़ा वेग से, मन्दिर नित्यके उत्सवों से, वाणी व्याकरणसे, नदी हंसके जोड़ेसे, सभा पण्डितों से, कुल सुपुत्र से, पृथ्वी राजा से और त्रिलोकी भगवान् विष्णु से सुशोभित होती है ॥
315.	**नात्मार्थं नाऽपि कामार्थं अतभूत दयां प्रतिः। वतर्ते यश्चिकित्सायां स सर्वमति वर्तते॥ - चरक संहिता**	जो अर्थ तथा कामना के लिए नहीं, वरन् प्राणिमात्र पर दया की दृष्टि से चिकित्सा में प्रवृत्त होता है, वही वैद्य सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक होता है।
316.	**नात्यन्त गुणवत् किञ्चित नाचाप्यत्यन्तनिर्गुणम् । उभयं सर्वकार्येषु दृष्यते साध्वासाधुवा ॥**	ऐसा कोई भी कार्य नही है, जो सर्वदा अच्छा हो, या सर्वदा बुरा हो, अच्छे और बुरे गुण तो प्रत्येक कार्य में होते ही है।
317.	**नाद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती भवेत् । न व्यापारशतेनापि शुकवत् पाठ्यते बकः॥**	किसी ऐसे चीज़ को सुधारने की कोशिश में प्रयास नहीं करना चाहिए जो इसके प्रयासों के योग्य नहीं है । आप एक बत्तख को वही तरकीबें नहीं सिखा सकते जो आप एक तोते को सिखाते हैं।
318.	**नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः ।विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेंद्रता ॥**	वन्य जीव शेर का राज्याभिषेक (पवित्र जल छिड़काव) तथा कतिपय कर्मकांड के संचालन के माध्यम से ताजपोशी नहीं करते किन्तु वह अपने कौशल से ही कार्यभार और राजत्व को सहजता व सरलता से धारण कर लेता है

319.	**नाम्नामकारि बहुधा निज सर्व शक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः। एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि दुर्दैवमीदृश मिहाजनि नानुरागः॥**	हे प्रभु! आपने अपने अनेक नामों में अपनी शक्ति भर दी है, जिनका किसी समय भी स्मरण किया जा सकता है। हे भगवन्! आपकी कृपा है, परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे उन नामों से प्रेम नहीं है।
320.	**नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः। अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥**	सज्जन लोग नारियल के फल के समान ऊपर से ही रूखे व कड़े देख पड़ते हैं, परन्तु भीतर से मधुर। अर्थात् बाहर से कठोर, परन्तु भीतर से बड़े ही दयालु होते हैं । दुर्जन लोग बैर के फल की तरह बाहर से ही सुन्दर देख पड़ते हैं, परन्तु भीतर उनके कठोरता (गुठली) ही रहती है ॥
321.	**नास्ति विद्यासमं चक्षुः नास्ति सत्यसमं तपः। नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥**	विद्या के समान कोई चक्षु (आँख) नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग)वासना, कामना) के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।
322.	**नास्तीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। यथा मैत्री च लोकेषु दानं च मधुरा च वाक्॥ मत्स्यपुराणम्**	संसार में किसी को भी अनुकूल करने का ऐसा कोई साधन नहीं है जैसा कि मैत्री, लोगों को दान देना और मीठी वाणी हैं।
323.	**निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः स्थिरा भवतु गच्छतु वा यथेष्टम्।अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥**	नीति में निपुण मनुष्य, चाहे निंदा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आयें या इच्छानुसार चली जायें, तुरन्त ही मृत्यु हो जाए या युगों के बाद हो; वे धैर्य पूर्वक न्याय के मार्ग से अपने कदम नहीं हटाते।

324.	**निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः। अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्रवासनः।।**	आप सुख साधन रहित, परिवतर्नहीन, निराकार, अचल, अथाह जागरूकता और अडिग हैं। इसलिए अपनी जाग्रति को पकड़े रहो।
325.	**निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः। न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि॥**	जैसे चन्द्रमा चाण्डालके घरको अपने किरणोंसे वञ्चित नहीं रखता; वैसे ही सज्जन पुरुष गुणहीन प्राणियोंपर भी दया करते हैं ॥
326.	**निशानां च दिनानां च यथा ज्योतिः विभूषणम् । सतीनां च यतीनां च तथा शीलमखण्डितम् ॥**	जैसे प्रकाश, दिन और रात का भूषण है, वैसे अखंडित शील, सतीयों और यतियों का भूषण है ।
327.	**निश्चित्वा यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः। अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।**	जिसके प्रयास एक दृढ़ प्रतिबध्दता से शुरू होते हैं जो कार्य पूर्ण होने तक ज्यादा आराम नहीं करते हैं जो समय बर्बाद नहीं करते हैं और जो अपने विचारों पर नियन्त्रण रखते हैं वह बुद्धिमान है।
328.	**नीरक्षीरविवेके हंस आलस्यं त्वं एव तनुषे चेत। विश्वस्मिन अधुना अन्यःकुलव्रतम पालयिष्यति कः।**	ऐ हंस, यदि तुम दूध और पानी में फर्क करना छोड़ दोगे तो तुम्हारे कुलव्रत का पालन इस विश्व मे कौन करेगा। यदि बुद्धिमान व्यक्ति ही इस संसार मे अपना कर्त्तव्य त्याग देंगे तो निष्पक्ष व्यवहार कौन करेगा।
329.	**नोपभोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयाञ्जरी । अस्थि निर्दशनः श्वेव जिह्वया लेढि केवलम् ॥**	वृद्ध मनुष्य न तो विषयों (स्त्री आदि) को भोग ही सकता है, और न उन्हें छोड़ ही सकता किन्तु जिस प्रकार दन्तहीन कुत्ता हड्डी को केवल जीभसे चाटता रहता है, किन्तु उसे चबा नहीं सकता है, वही दशा उस वृद्ध मनुष्य की भी होती है ॥

330.	**पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुद्ध्यते । अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेनावगम्यते ॥**	मनुष्य की चतुराई और सचाई तो बातचीत करने से मालूम होती है, मनुष्य की नमता , गम्भीरता ता उसे देखने से ही मालूम हो जाती है ॥
331.	**पठतो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम्। जाग्रतस्तु भयं नास्ति कलहो नास्ति मौनिनः॥**	जो विद्याध्ययन करता है, उसमें मूर्खता, जो जप करता है, उसके पाप नहीं रह सकते, जो जागरित है, उसको कोई भय नहीं सता सकता और जो मौन है, उसका किसीसे कलह नहीं हो सकता॥
332.	**पण्डिते च गुणाः गुणाः सर्वे मूर्खे दोषा हि केवलम्। तस्मान्मूर्खसहस्त्रेभ्यः प्राज्ञ एको विशिष्यते॥**	पण्डितोंमें सब गुण ही रहते हैं और मूं में केवल दोष ही; इसलिये एक पण्डित हजार मूर्ख्से भी उत्तम है॥
333.	**पबन्ति नद्यः स्वयं एव न अम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः। न अदन्ति सस्य खलु वारिवाहा, परोपकाराय सतां विभतयः॥**	नदी स्वयं के जल को नहीं पीती, वृक्ष स्वयं के फल को नहीं खाते और बादल अपने द्वारा पानी बरसा कर पैदा किए गए अन्न को नहीं खाते। सज्जन हमेशा परोपकार ही करते हैं।
334.	**पयौवनसंपन्ना विशाल कुलसम्भवाः। विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥**	रुपसम्पन्न, यौवनसम्पन्न और विशाल कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी विद्याहीन होने पर, सुगंधरहित केसुड़े के फूल की भाँति, शोभा नहीं देता।
335.	**परदारान् परद्रव्यं परीवादं परस्य च। परीहासं गुरोः स्थाने चापल्यं च विवर्जयेत्॥**	पर-स्त्री, परधन, पर-निन्दा, परिहास और बड़ोंके सामने चञ्चलता- इनका त्याग करना चाहिये ॥
336.	**परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्। सचहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।**	दूसरों के धन का अपहरण, पर स्त्री के साथ संसर्ग और हितैषी मित्रों के प्रति घोर अविश्वास ये तीनों दोष जीवन का नाश करने वाले हैं।

337.	**परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः । अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे ॥**	विपत्ति आने पर, विचार कर कार्य करना ही बुद्धिमत्ता है। विना विचारे काम करने वाले प्राणियों पर तो पद-पद में विपत्तियाँ आती है
338.	**परो अपि हितवान् बन्धुः बन्धुः अपि अहितः परः। अहितः देहजः व्याधिः हितम् आरण्यं औषधम्॥**	हितवान् अपरिचित व्यक्ति भी को परिवार के सदस्य की तरह महत्व देना चाहिए और अहितवान् परिवार का कोई अपना सदस्य को महत्व देना बंद कर दे, ठीक उसी तरह जैसे शरीर के किसी अंग में कोई बीमारी हो जाए, तो वह हमें तकलीफ पहुँचाने लगती है, जबकि जंगल में उगी हुई औषधी लाभकारी होती है।
339.	**परोऽपि हितवान् बन्धुः बन्धुरप्यहितः परः। अहितो देहजो व्याधिः हितमारण्यमौषधम्॥)हितोपदेश)**	व्याधियाँ शरीर के भीतर रहते हुए हमारे दुश्मन हैं और हमसे दूर पेड़-पौधों में में रहकर भी औषधियाँ मित्र हैं । जिनसे हमारा रक्त का सम्बन्ध न हो किन्तु वह हमारा हित करे तो वे अपने होते हैं और रिश्तेदार होकर भी कोई हमारा अहित करे तो वह पराया है।
340.	**परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भ पयोमुखम्॥**	जो आँखके ओट होनेपर काम बिगाड़े और सम्मुख होनेपर मीठीमीठी बात बनाकर कहे, ऐसे मित्रको मुखपर दूध तथा भीतर विषसे भरे घड़ेके समान त्याग देना चाहिये॥
341.	**परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्। नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे॥**	जिन सज्जनों के मनमें सदा परोपकार करने की इच्छा बनी रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पग पर सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥

342.	**परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। विसमरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुस्थिते॥**	दूसरों के कष्ट में पड़ने पर हम उन्हें जो उपदेश देते हैं, स्वयं कष्ट में पड़ने पर उन्हीं उपदेशों को भूल जाते हैं।
343.	**परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् । धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित् तु महात्मनः ॥**	क्यों कि- धर्म के विषय में दूसरे को उपदेश देने के लिये पण्डिताई दिख-लाना तो सभी के लिए सहज है, परन्तु धर्म का स्वयं आचरण तो बिरले ही महात्मा लोग किया करते हैं ॥
344.	**पलितेषु हि दृष्टेषु पुंसः का नाम कामिता । भैषज्यमिव मन्यन्ते यदन्यमनसः स्त्रियः ॥**	जब पुरुष के सब बाल पक गये हों तो फिर कहो उसकी कामुकता कैसी? अर्थात् वृद्धावस्था में कामोपभोग की इच्छा व्यर्थ है । क्यों कि वृद्ध पुरुष की स्त्री दूसरे से आसक्त हो जाती हैं और वह अपने उस वृद्ध पति को औषध की तरह ही कडुआ समझती है ॥
345.	**पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा। लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन॥**	इसमें पश्चात्ताप क्या करना, मैं तो केवल उनका सेवक ही हूँ। श्री कृष्ण को कभी भी सांसारिक व्यक्ति के तौर पर नहीं देखना चाहिए।
346.	**पल्लवग्राहि पाण्डित्यं क्रयक्रीतञ्च मैथुनम्। भोजनञ्च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥**	क्यों कि-पल्लवग्राही पाण्डित्य-(थोडा थोडा सब कुछ पढ़ना, परन्तु किसी विषय को पूरा पूरा न जानना), द्रव्य देकर मैथुन करना, दूसरे के अधीन होकर पेट पालना (भोजन करना) ये तीनों बातें तो अत्यन्त कष्ट देने बाली और उपहासास्पद ही हैं, अर्थात् निस्सार (व्यर्थ) ही है
347.	**पातितोऽपि कराघातै-रुत्पतत्येव कन्दुकः। प्रायेण साधुवृत्तानाम-स्थायिन्यो विपत्तयः॥**	हाथ से पटकी हुई गेंद भी भूमि पर गिरने के बाद ऊपर की ओर उठती है, सज्जनों का बुरा समय अधिकतर थोड़े समय के लिए ही होता है।

348.	**पादपानां भयं वातात् पद्मानां शिशिराद्भयम्। पर्वतानां भयं व्रजात् साधूनां दुर्जनाद्भयम्॥**	वृक्षों को आँधी से, कमलों को ओस से, पर्वतों को वज्र से और साधुओं को दुर्जन से डर है ॥
349.	**पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च। नैव गां च कुमारी च न वृद्धं न शिशुं तथा॥**	अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और बालक-इनको पैरसे न छूना चाहिये ॥
350.	**पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति। पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति॥**	अधर्म का चौथा भाग अधर्म करने वाले को, चौथा भाग साक्षी को, चौथा भाग सभासदों को और चौथा भाग राजा को प्राप्त होता है।
351.	**पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ॥**	शराब पीना, दुष्टों का साथ, पति का विरह, इधर उधर घूमना, दूसरे के धर में रहना या सोना, अकारण हँसना, हँसी-ठट्ठा ये छः कारण स्त्रियों के दूषित होने (बिगड़ने) के होते हैं ॥
352.	**पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥**	जो पाप से रोकता है, हित में जोडता है, गुप्त बात गुप्त रखता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति आने पर छोडता नहीं, समय आने देता है - संत पुरुष इन्हीं को सन्मित्र के लक्षण कहते हैं।
353.	**पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥**	बाल्यावस्था में स्त्री की रक्षा पिता को करनी चाहिए जवानी में पति को रक्षा करनी चाहिये । वृद्धावस्था में पुत्र की उनकी रक्षा करना चाहिये। इस प्रकार स्वयं को कभी स्वतन्त्र नहीं छोडना चाहिये ॥
354.	**पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम्। तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः।।**	जिस व्यक्ति ने तीर्थ यात्रा पर जाकर तपस्या की है, तो उसके प्रभाव से उसका पुत्र आज्ञाकारी, धनवान, गुणी और विद्वान बनता है।

355.	**पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्तः परीक्ष्यान्यतर द्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥**	ना तो सब पुराना अच्छा होता हैं और ना ही नूतन होने से कोई कविता बुरी तथा हेय होती हैं। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठकर वस्तु को अंगीकार कर लेते हैं, मूढ़ इन्सान दूसरों द्वारा बताने पर ग्राह्य अथवा अग्राह्य का निर्णय करता हैं।
356.	**पुस्तकेषु तु या विद्या परहस्तगतं धनम्। कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद् धनम्॥**	ज्ञान यदि पुस्तक में ही रहे (अर्थात् उसे पढ़ा न जाए) और स्वयं का धन यदि किसी अन्य के हाथों में हो तो आवश्यकता पड़ने पर उस ज्ञान और धन का उपयोग नहीं नहीं किया जा सकता।
357.	**पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः । स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ।।**	स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं। इन्ही से परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ती है। यह महापुरूषों को जन्म देनेवाली होती है। इसलिए स्त्रियाँ विशेष रूप से रक्षा करने योग्य होती है।
358.	**पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। तस्मात्पुरूषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः।।**	पूर्व जन्म में किए गए कर्म भाग्य कहलाते हैं। इसलिए मनुष्य को बिना आलस्य के उद्योग करना चाहिए।
359.	**पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः । धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ॥ पञ्चतन्त्रं मित्रभेदः**	जो प्रथम (युवा) अवस्था में शांत है, वही शांत है, ऐसा मेरा मत है, धातुओं के क्षीण हो जाने के समान वृद्धावस्था में कौन शांत नहीं होता है।
360.	**पृथ्वियां त्रीणि रत्नानि जलमन्नम सुभाषितं। मूढ़ेः पाधानखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।**	पृथ्वी पर तीन रत्न हैं जलअन्न और शुभ वाणी पर मुर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को रत्न की संज्ञा देते हैं।

361.	**पृथ्वी रत्नसंपूर्णां हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमम् व्रजेत्॥**	जीवन में लालच की कोई सीमा नहीं होती। यदि मनुष्य को सम्पूर्ण पृथ्वी, सभी स्त्रियाँ, सारा सोना, धन रत्न आदि भी दे दिए जायें तो ही उसके मन को शाँति नहीं जितना अधिक धन वैभव उतनी ही बीमारी और अशाँति और लालच तथा क्रोध भी बढ़ेगा।
362.	**प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरित्रमात्मनः। किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं, किन्नु सत्पुरुषैरिव॥**	मेरे इस बहुमूल्य जीवन का जो दिन व्यतीत हो रहा है, वह पुनः लौटकर नहीं आएगा। अतः प्रतिदिन यह चिन्तन कर कि आज का दिन पशुवत् गुजरा अथवा सत्पुरुष की तरह गुजरा।
363.	**प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये । आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥**	महान व्यक्ति अस्वीकृति और दान के मामलों में, सुख और दुःख की स्थितियों में, प्रिय और अप्रिय परिस्थितियों में आत्म-समानता अपनाता है और इस प्रकार मानसिक संतुलन प्राप्त करता है।
364.	**प्रथमेनार्जिता विद्या द्वितीयेनार्जितं धनं। तृतीयेनार्जितः कीर्तिः चतुर्थे किं करिष्यति।।**	जिसने पहले आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या को अर्जित नहीं की, द्वितीय आश्रम (ग्रहस्थ) में धन को अर्जित नहीं किया हो, तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ) मे कीर्ति अर्जित नहीं की तो वह चतुर्थ (सन्यास) आश्रम में क्या करेगा?
365.	**प्रदोषे दीपकश्चंद्र प्रभाते दीपको रविः । त्रैलोक्ये दीपको धर्म सुपुत्रः कुलदीपकः ॥**	शाम को चन्द्रमा प्रकाशित करता है, दिन को सूर्य प्रकाशित करता है, तीनों लोकों को धर्म प्रकाशित करता है और सुपुत्र पूरे कुल को प्रकाशित करता है

366.	प्रविचार्योत्तरं देयं सहसा न वदेत् क्वचित्। शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषास्त्याज्या गुरोरपि॥	किसी विषयमें] एकाएक न बोले, सोच-विचारकर जवाब देना उचित है। शत्रुमें भी यदि गुण रहें तो उन्हें लेना चाहिये और गुरुमें भी दोष हों तो उन्हें त्याग देना चाहिये॥
367.	प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् । छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥	मच्छर पहले पैर पर गिरता है, फिर पीठ का मांस खाता है, पुनः धीरे-धीरे कान में कुछ गुनगुनाता है, फिर धीरे-धीरे मौका देखकर सहसा निर्भय होकर भीतर प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार मच्छर दुर्जनों के सब चरित्रों का अनुकरण करता है । दुष्ट भी पहले पैर पर गिरता है, फिर परोक्ष में काम को बिगाड़ता है, फिर कान के पास आकर दूसरों की चुगली करता है, और मौका पाते ही आक्रमण भी करता है
368.	प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा । आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधवः ॥	जैसे हर मनुष्य को अपने प्राण अत्यंत प्रिय होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को भी अपने प्राण प्रिय होते हैं। सज्जन पुरुष इस आत्मतुल्यता को समझकर सब प्राणियों पर दया करते हैं।
369.	प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥	निम्न श्रेणी के पुरुष विघ्नों के भय से किसी नये कार्य का आरंभ ही नहीं करते। मध्यम श्रेणी के पुरुष कार्य तो आरंभ कर देते हैं पर विघ्नों से विचलित होकर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम श्रेणी के पुरुष बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारंभ किये गये कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते हैं।

370.	**प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः। तस्मात तदैव वक्तव्यम वचने का दरिद्रता।।**	प्रिय वाक्य बोलने से सभी जीव संतुष्ट हो जाते हैं, अतः प्रिय वचन ही बोलने चाहिए। ऐसे वचन बोलने में कंजूसी कैसी।
371.	**प्रीतैः पीड़ा न स्यात उच्चाद्वयपि पतति। विशति यदि वा भुजंगम विजं भित्तम॥ [वराहमिहिर]**	जो व्यक्ति ग्रहों की पूजा-शान्ति करता है, वे उस जातक की रक्षा करते हैं, भले ही वह साँपों से भरे गड्ढे में पड़ गया हो।
372.	**बलवानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धन। श्रुतवानपि मूर्खोऽसौ यो धर्मविमुखो जनः॥**	जो व्यक्ति धर्म से विमुख होता है वह बलवान् हो कर भी असमर्थ, धनवान् हो कर भी निर्धन तथा ज्ञानी हो कर भी मूर्ख होता है।
373.	**बालादपि ग्रहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः । रवेरविषये किं न प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥**	बच्चों के द्वारा भी कही गई सही बात विद्वानों को स्वीकार कर लेनी चाहिए। क्या सूर्य के अभाव में छोटा दिया प्रकाश नहीं करता?
374.	**बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः । तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥**	अतिथि यदि बालक हो या वृद्ध हो या जवान हो, वह यदि अपने घर पर आ जाय, तो उसकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। क्योंकि अतिथि सभी का गुरु और पूज्य होता है ॥
375.	**बुद्धिः कर्मानुसारिणी। बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।।**	बुद्धि कर्म का अनुसरण करती है। बुद्धि तलवार से अधिक शक्तिशाली है।
376.	**बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः। वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः।।**	राम बहुत बुद्धि सम्पन्न थे और सदा मधुर वाणी से बोलते थे। अपने समीप किसी काम से आये हुए मनुष्यों से स्वयं पहले बोलते थे और मीठा बोलते थे । बल और पराक्रम से सम्पन्न होने पर भी उन्हें अपनी शक्ति का गर्व कभी नहीं होता था ।

377.	**ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।** **ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः।।**	ब्रह्म-दैव-अर्ष और प्रजापत्य, इन चार प्रकार के विवाहों के बाद ही ब्राह्मणों और गुणी लोगों के प्रिय पुत्र बनते हैं।
378.	**भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बि नो घनाः।अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैषः परोपकारिणाम्॥**	फल आने पर वृक्ष नीचे झूकते हैं, नये जल से भरे बादल नीचे झूकते हैं, समृद्धि के कारण सज्जन अनुद्धत होते है, परोपकारि व्यक्तिओ का ऐसा स्वभाव होता हैं।
379.	**भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती।** **तस्यां हि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्॥**	भाषाओं में सर्वाधिक मधुर भाषा गीर्वाणभारती अर्थात देवभाषा संस्कृत है, संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक मधुर काव्य हैं और काव्यों में सर्वाधिक मधुर सुभाषित हैं।
380.	**भूरिभिर्भारिभिर्भीराभूभारैरभिरेभिरे। भेरीरे।** **भिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः ॥**	निर्भय हाथी जो की भूमि पर भार स्वरूप लगता है, अपने वजन के चलते, जिसकी आवाज नगाड़े की तरह है और जो काले बादलों सा है, वह दूसरे दुश्मन हाथी पर आक्रमण कर रहा है।
381.	**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः ,तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥ (वैराग्यशतकम्)**	भोगों को हमने नहीं भोगा, बल्कि उन्होंने हमें भोग लिया। तपस्या हमने नहीं की,बल्कि हम स्वयं तप गए। काल कहीं नहीं गया बल्कि हम चले गए, तृष्णा नहीं गयी बल्कि हम जीर्ण हो गए।
382.	**मनसा चिन्तितंकार्यं वचसा न प्रकाशयेत्।** **अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते॥**	मन से सोचे हुए कार्य-सँकल्प को किसी के भी समक्ष उजागर न करें क्योंकि जिस कार्य पर किसी नज़र लग जाती है, वह फिर पूरा नहीं होता।

383.	**मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः। परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः (नीतिशतकम्)**	मन, वचन और शरीर में सत्कर्मरूपी अमृत से भरे हुए तीनों लोकों को अनेक उपकारों से सन्तुष्ट करनेवाले तथा दूसरे के लेशमात्र गुण को नित्य ही पर्वताकार (बहुत बड़ा) बनाकर अपने हृदय में प्रसन्न होनेवाले सज्जन (संसार में) कुछ हैं ,कितने ही हैं)?
384.	**मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥**	दुष्टोंके मन, वचन एवं कर्ममें और-और भाव होते हैं, परन्तु सज्जनोंके मन, वचन एवं कर्म तीनोंमें एक ही भाव रहता है ।
385.	**मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति । अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ॥**	मनस्वी मनुष्य मर भले ही जाता है, परन्तु वह किसी के सामने दीनता कभी नहीं प्रगट करता है। देखो, अग्नि बुझ तो जरूर जाता है, परन्तु वह कभी शीतल नहीं हो ता है ॥
386.	**मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः। पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥**	बुद्धिमानों की संगति में मंद बुद्धि व्यक्ति भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जैसे रीठे के फल से गन्दा पानी भी स्वच्छ हो जाता है।
387.	**मरणानतानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्। क्रियतामस्य संसकारो ममापेष्य यथा तव॥)वाल्मीकि रामायण)**	किसी की मृत्यु हो जाने के बाद उससे बैर समाप्त हो जाता है, मुझे अब इस)रावण) से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। अतः तुम अब इसका विधिवत अन्तिम संस्कार करो।
388.	**मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं तथा । दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ॥**	हे युधिष्ठिर, जैसे जलरहित देश में वर्षा सफल होती है, खाने की इच्छा से अन्न दान करने से भूख का निवारण और आनंद मिलता है, वैसे ही निर्धन को दिया गया दान भी सफल होता है।

389.	**मर्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते । शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम् ॥**	'मुझको मरना होगा' यह सोच कर मरने वाले मनुष्य को जो दुःख होता है, उसको दूसरा मनुष्य केवल अनुमान से वर्णन नहीं कर सकता है ॥
390.	**महताप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु । भार्यासु च विरक्तासु तदन्तं तस्य जीवनम् ॥**	जो पुरुष विशेष लाभवश भी शत्रुओंका, या विरक्त स्त्री (पर-पुरुषानुरागवती) का विश्वास करता है, उस पुरुष के जीवन का अन्त ही समझना चाहिये ॥
391.	**महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः। पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥**	महान व्यक्तियों की संगति किसे उन्नति प्रदान नहीं करती? कमल के फूल पर पानी की बूंद मोती के समान दिखने लगता है
392.	**महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्येते॥**	श्री भगवान् बोले :- हे महाबाहो कुंतीपुत्र! निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है लेकिन उसे अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है।
393.	**मा बिभीहि देवात्। किन्तु बिभीहि कर्मणः। क्षाम्यति देवः नतु कर्म।**	ईश्वर से नही अपने कर्म से डरना चाहिए क्योकि ईश्वर क्षमा कर देते है परन्तु कर्म नही ।
394.	**मा भ्राता भ्रातरं द्विन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ अथर्ववेद ३**	भाई, भाई से, बहन, बहन से द्वेष न करें, समान गति से एक-दूसरे का आदर- सम्मान करते हुए परस्पर मिल-जुलकर एकमत से कर्मों को करने वाले होकर भद्रभाव से संभाषण करें। संयुक्त परिवार में उक्त तरह की भावना रखने से गृहकलय नहीं होता और शांतिमय जीवन जी कर सर्वांगिण उन्नती करता रहता हैं।

395.	**माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।** **बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥**	जिस मनुष्य की माँ लक्ष्मी के समान है, पिता विष्णु के समान है और भाइ - बन्धु विष्णु के भक्त है, उसके लिए अपना घर ही तीनों लोकों के समान है ।
396.	**माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।** **कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः॥**	माता, पिता और मित्र तीनों ही स्वभावतः ही हमारे हित के लिए सोचते हैं, वे हमारे हित करने के बदले में अपेक्षा नहीं रखते। अन्य लोग यदि हमारे हित की सोचते हैं ,बदले में हमसे कुछ न कुछ अपेक्षा भी रखते हैं।
397.	**माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।** **अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥**	जिसके घरमें माता नहीं है और जिसकी स्त्री कटुवचन बोलनेवाली है, उसको वनमें जाना उचित है, उसके लिये जैसा वन है वैसा घर है।
398.	**माता शत्रु, पिता वैरी, येषां मनसि जायते।** **तेषां नित्य हानि स्यात सौख्यमं नैव लभ्यते॥**	जिसके भी मन में यह विचार आया कि मेरे माता-पिता मेरे शत्रु हैं, उस व्यक्ति की कभी भी जीवन में उन्नति नहीं हो सकती एवम दुर्भाग्य निरंतर उसका पीछा करता है। अतः अपनी उन्नति के लिए सबसे पहले अपने से बड़ों का सम्मान अवश्य करे
399.	**माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।** **न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥**	अपने बालक को न पढ़ाने वाले माता व पिता अपने ही बालक के शत्रु हैं, क्योंकि हंसो के बीच बगुले की भाँति, विद्याहीन मनुष्य विद्वानों की सभा में शोभा नहीं देता।
400.	**मातापितृकृताभ्यासो गुणितामेति बालकः ।** **न गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः ॥**	जो माता-पिता उस बालक को सद्गुणों का अभ्यास कराते हैं, वही गुणी बनता है। जन्म से कोई भी पुत्र पण्डित नहीं बनता।

401.	**मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।**	जो पर-स्त्रियोंको माताके समान, पर-धनको मिट्टी के ढेलेके समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही वास्तव में पण्डित है ॥
402.	**मातेव रक्षति पितेव हिते नियुक्ते, कान्तेव चाभिरम यत्यपनीय खेदम्। लक्ष्मी तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति, किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥**	कल्पलता के समान विद्या संसार में क्या सिद्ध नहीं करती? माता के समान वह रक्षा करती है, पिता के समान स्वहितमें नियुक्त करती है, स्त्रीके समान खेदका परिहार करके आनन्दित करती है, लक्ष्मीकी वृद्धि करती है और दिशा-विदिशाओं में कीर्तिका विस्तार करती है
403.	**मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणं चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्। भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणं विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्॥**	माताके समान शरीरका पालन-पोषण करनेवाली, चिन्ताके समान देहको सुखानेवाली, स्त्रीके समान शरीरको सुख देनेवाली और विद्याके समान अङ्गका आभूषण दूसरा कोई नहीं है ॥
404.	**मात्रा, स्वस्रा, दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो महान्तमपि कर्षति ॥**	बुद्धिमान् पुरुष को अपनी माता, बहन तथा अपनी लड़की के साथ भी कभी भी एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, क्यों कि इन्द्रियों बड़ी प्रबल हैं, ये (इन्द्रियाँ) विद्वान् को भी अपने वश में कर ले सकती है ॥
405.	**मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं, कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा समैर्बान्धवान्। अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं, विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशम्॥**	मित्रको (निष्कपट हृदय) से जीते, शत्रुको नीति बलसे, लोभीको धन से, स्वामी को कार्य से, ब्राह्मण को आदर से, युवती को प्रेम से, बन्धुओं को समभाव से, अत्यन्त क्रोधी को स्तुति से, गुरु को विनय से, मूर्ख को बातों से, बुद्धिमान को विद्या से, रसिक को रसिकता से और सभी को सुशीलता से वशीभूत करे ॥

406.	**मित्रवान्साधयत्यर्थान्दुःसाध्यानपि वै यतः। तस्मान्मित्राणि कुर्वीत समानान्येव चात्मनः।। पञ्चतन्त्रं मित्रसंप्राप्ति**	व्यक्ति कठिन से कठिन कार्यों को भी मित्र की सहायता से सिध्द कर लेता है। अतः अपने अनुकुल मित्र अवश्य बनाना चाहिए।
407.	**मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव। भूमेः गरीयसी माता, स्वर्गात उच्चतरः पिता। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गातअपि गरीयसी।**	मित्र, धन्य, धान्य आदि का संसार में बहुत अधिक सम्मान है। भूमि से श्रेष्ठ माता है, स्वर्ग से ऊंचे पिता हैं। जननी, जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं।
408.	**मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि। किवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्॥**	स्वयं को मुक्त मानने वाला मुक्त ही है, और बद्ध मानने वाला बंधा हुआ ही है, यह कथन सत्य ही है, कि जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति होती है।
409.	**मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथानुरागो मधुरा च वाणी स्नेहोऽधिकः सम्भ्रमदर्शनं च सदानुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ॥**	प्रसन्न मुख, विमल नेत्र, बातों में प्रेम, मधुर वाणी, अधिक स्नेह, आने पर उत्सुकतापूर्वक देखना- ये सब अनुरक्त मनुष्यों के लक्षण हैं
410.	**मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः। जातौ जातौ नवाचारा नवा वाणी मुखे मुखे॥**	भिन्न-भिन्न मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न मति (विचार) होती है, भिन्न-भिन्न सरोवर में भिन्न-भिन्न प्रकार का पानी होता है, भिन्न-भिन्न जाति के लोगों के भिन्न-भिन्न जीवनशैलियाँ (परम्परा, रीति-रिवाज) होती हैं और भिन्न-भिन्न मुखों से भिन्न-भिन्न वाणी निकलती है।
411.	**मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥**	जिन परमपिता परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से गूंगे बोलने लगते हैं, लंगड़े पहाड़ों को पार कर लेते हैं, उन परम आनंद स्वरुप श्रीमाधव की मैं वंदना करता हूँ।

412.	**मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत परास्ते क्षयं गताः। प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः।।**	भाग्य की कल्पना मूर्ख लोग ही करते हैं। बुद्धिमान लोग तो अपने पुरूषार्थ, कर्म और उद्द्यम के द्वारा उत्तम पद को प्राप्त कर लेते हैं।
413.	**मूर्ख संग ना कीजिए, लोहा जलि ना तिराई। कदली सीप भुजंग मुख, एक बूंद तिहं पाई॥**	मूर्ख की संगत नहीं करनी चाहिए, मूर्खों की संगत से केवल दुख, समस्या और अशांति ही मिलती है, जैसे लोहा जल पर नहीं तैर सकता, स्वाति नक्षत्र में जब बरसात के जल की बूँद केले के पत्ते पर पड़ती है, तो वह कपूर बन जाती है, सीप में पड़ती है तो वह मोती बन जाती है, और साँप के मुँह में पड़ती है तो वह विष बन जाती है, जैसी संगत होती है वैसी रंगत चढ़ जाती है।
414.	**मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टास्त्रीभरणेन च। दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।।**	मुर्ख शिष्यों को पढ़ाकर, दुष्ट स्त्री के साथ अपना जीवन बिताकर, रोगियों और दुखियों के साथ रहकर विद्वान भी दुखी हो जाता है।
415.	**मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा। क्रोधश्च दृढवादश्च परवाक्येष्वनादरः।।**	एक मुर्ख के पांच लक्षण होते है घमण्ड, दुष्ट वार्तालाप, क्रोध, जिद्दी तर्क और अन्य लोगों के लिए सम्मान में कमी।
416.	**मूर्खा यत्र न पूज्यते धान्यं यत्र सुसंचितम्। दम्पत्यो कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता॥**	जहाँ पर मूर्खो की पूजा नहीं होती (अर्थात् उनकी सलाह नहीं मानी जाती), धान्य को भलीभाँति संचित करके रखा जाता है और पति पत्नी के मध्य कलह नहीं होता वहाँ लक्ष्मी स्वयं आ जाती हैं।
417.	**मूर्खो ऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्ठितः । तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते ॥**	मूर्ख जनों की मूर्खता का अत्यंत हितकारी आवरण मौन रहना बताया है ,विशेष रूप से विद्वानों की सभा में शोभादायक होता है ।

418.	**मूर्खोऽपि मूर्खं दृष्ट्वा च चन्दनादतिशीतलः। यदि पश्यति विद्वांसं मन्यते पितृघातकंम्॥**	एक मूर्ख व्यक्ति यदि अपने ही समान किसी अन्य मूर्ख व्यक्ति को देखता है तो उसे चन्दन का लेप करने के समान शीतलता का अनुभव होता है, परन्तु यदि उस का सामना किसी विद्वान् व्यक्ति से होता है तो वह ऐसा व्यवहार करता जैसे है कि मानो वह किसी ऐसे व्यक्ति से मिल रहा है जिसने अपने पिता का वध किया हो।
419.	**मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनां । लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारण वैरिणो जगति ॥**	इस संसार में जिस प्रकार हिरन अपनी घास खाकर खुश रहता है और शिकारी बिना किसी बात के उस से घृणा करता है इस प्रकार मछली जल में प्रसन्न रहती है परन्तु मछुआरा उससे घृणा करता है इसी प्रकार सज्जन पुरुष भी अपने आप में सनुष्ट रहते है परन्तु दुष्ट प्रवृति वाले लोग उससे बिना बात ही घृणा करते है।
420.	**मृगाः मृगैः संगमुपव्रजन्ति गावश्च गोभिस्तुरंगा स्तुरंगैः । मूर्खाश्च मूर्खैः सुधयः सुधीभिः समान शीलव्यसनेष सख्यम्॥**	हिरण हिरण का, गाय गाय का, घोड़ा घोड़े का अनुसरण करता है, मूर्ख मूर्ख का और बुद्धिमान बुद्धिमान का अनुसरण करता है। मित्रता समान गुण वालों में होती है।
421.	**मृद्घटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति । सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः ॥**	दुर्जन प्राणी मिट्टी के घड़े की तरह अनायास ही विकृत हो जाते हैं और उनका पुनः मेल कठिनता से होता है । परन्तु सज्जन लोग सुवण के घट की तरह जल्दी बिगड़ते नहीं है, और यदि बिगड़ते भी है, तो शीघ्र ही पुनः ठीक किए जा सकते हैं ॥

422.	**मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा, धृष्टः पार्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः। क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः, सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥**	मनुष्य चुप रहनेसे गूंगा, चतुर वक्ता होनेसे चापलूस या बकवादी कहलाता है, इसी प्रकार यदि पासमें बैठे हो तो ढीठ, दूर रहे तो दब्बू, क्षमा रखे तो डरपोक और अन्याय न सह सके तो प्रायः बुरा समझा जाता है; इसलिये सेवाधर्म बहुत ही कठिन है, इसे योगी भी नहीं जान पाते ॥
423.	**यः स्वपक्षं परित्यज्य,पर पक्षं निषेवते। स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तेनैव हन्यते॥**	जो भी संपत्ति-धन या अन्य मान-सम्मान के लालच में अपनों को छोड़कर शत्रुओं में जाकर मिल जाता है तो शत्रु पहले तो अपनों को मारता है, फिर जो शत्रुओं में मिलता है, उसे भी मार डालते हैं।
424.	**यः पठति लिखति पश्यति परिपृच्छति पंडितान् उपाश्रयति। तस्य दिवाकरकिरणैः नलिनी दलं इव विस्तारिता बुद्धिः॥**	जो पढ़ता है, लिखता है, देखता है, प्रश्न पूछता है, बुद्धिमानों का आश्रय लेता है, उसकी बुद्धि उसी प्रकार बढ़ती है जैसे कि सूर्य किरणों से कमल की पंखुड़ियाँ।
425.	**यः समः सर्वभूतेषु विरागी गतमत्सरः। जितेन्द्रियः शुचिर्दक्षः सदाचार समन्वितः॥**	गुरु सब प्राणियों के प्रति वीतराग और मत्सर से रहित होते हैं। वे जीतेन्द्रिय, पवित्र, दक्ष और सदाचारी होते हैं।
426.	**यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः। तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु र्जयेत्॥ [मनुस्मृतिः]**	जिस कार्य को करते हुए आंतरिक सुख होता है, उसे विशेष प्रयास से करें और इसके विपरीत कार्य से बचें।
427.	**यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥**	जहाँ कोई योग्य विद्वान् नहीं है, वहाँ अल्प बुद्धि वाले पुरुष की भी प्रशंसा होती है। जहाँ वृक्ष नहीं हैं, वहाँ रेंड भी वृक्ष कहा जाता है॥

428.	**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः मनुस्मृति 3**	जहां स्त्री का सम्मान होता है, उनकी अपेक्षाओं की पूर्ति होती है, उस स्थान, समाज, तथा परिवार पर देवतागण प्रसन्न रहते हैं । जहां,उनके प्रति तिरस्कारमय व्यवहार किया जाता है, वहां देवकृपा नहीं रहती है और संपन्न किये गये कार्य सफल नहीं होते।
429.	**यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता। मज्जन्ति तेवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव।।**	जहां का शासन स्त्री, जुआरी और बालक के हाथ में होता है। वहां के लोग नदी में पत्थर की नाव में बैठने वालों की भांति विवश होकर विपत्ति के समुद्र में डूब जाते हैं।
430.	**यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे। समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कञ्चन॥ - एवं भार्याश्चपुत्राश्च ज्ञातयश्च धनानि च। समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः॥ - Valmiki Ramayana**	महासागर में बहते हुए लकड़ी के दो टुकड़े कभी एक दूसरे से मिल जाते हैं और कुछ समय तक साथ तैरते रह कर अलग हो जाते हैं । इसी प्रकार इस संसार में स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी और धन-धान्य मनुष्य को कुछ समय तक मिलते हैं, क्योंकि इन सब का बिछड़ जाना अवश्यम्भावी है।
431.	**यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निर्घषणच्छेदन तापताडनैः।तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा।।**	एक मुर्ख की पूजा उसके घर में होती है, एक मुखिया की पूजा उसके गाँव में होती है, राजा की पूजा उसके राज्य में होती है और एक विद्वान की पूजा सभी जगह पर होती है।
432.	**यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः। चित्ते वाचि क्रियायां च साधुनामेकरूपता॥**	जो चित्त (मन) में हो वही वाणी से प्रकट होना चाहिए और जो वाणी से प्रकट हो उसके अनुरूप ही कार्य करना चाहिए। जिनके चित्त, वाणी और कर्म में एकरूपता होती है वही साधुजन होते हैं।

433.	**यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः । यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ अथर्ववेद ३**	जिस प्रकार द्यौ (आकाश) और पृथिवी न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो भय से जहां शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं वहीं मानसिक रोग भी जन्मते हैं। संयम के साथ निर्भिकता होना जरूरी है।
434.	**यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तथा पुराकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥**	जैसे हजार गायों में बछड़ा अपनी मां को पाता है। वैसे ही पूर्व कर्म कर्ता का अनुसरण करते हैं॥
435.	**यथा भूमिः तथा तोयं, यथा बीजं तथाङ्कुरः। यथा देशः तथा भाषा, यथा राजा तथा प्रजा॥ -**	जैसी भूमि होती है, वैसा ही पानी होता है। जैसा बीज होता है, वैसा ही अंकुर होता है। जैसा देश होता है, वहाँ के रहने वालों की वैसी भाषा होती है। जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही होती है।
436.	**यथा माता हि पुत्राणां कृते ददाति सर्वस्य। प्रकृतिरेव सर्वस्य कृते ददाति जीवनाम्।।**	जिस प्रकार एक माता अपने पुत्रों के पालन पोषण के लिए सब कुछ अर्पण कर देती है, उसी प्रकार प्रकृति ही एक ऐसी है जो समस्त जीवों के पोषण के लिए सब कुछ प्रदान करती है।
437.	**यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद् यदिच्छति । एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥**	जैसे एक कुम्हार मिट्टी का उपयोग करके आवश्यक वस्तु बनाता है बल्कि मिट्टी का उपयोग कार्य में भी करता है वैसे ही मनुष्य भी अपने द्वारा किए गए कार्य का ही फल भोगता है ।

438.	यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्। एवं परुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।।	जैसे एक पहिये से रथ नहीं चल सकता। ठीक उसी प्रकार बिना पुरुषार्थ के भाग्य सिद्ध नहीं हो सकता है।
439.	यथोदयगिरेर्द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते । तथा सत्सन्निधानेन हीनवर्णोऽपि दीप्यते॥	जैसे सूर्योदय के बाद सूरज के समीप स्थित सभी वस्तुएं सूर्य के प्रकाश से अत्यंत सुंदर होती हैं, वैसे ही मूर्ख , साधुओं की संगति में विवेकशील बन जाता है। उसकी बुद्धि का विकास होता है।
440.	यदभावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा । इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥	जो नियत नहीं , वह होगा ही नहीं। जो नियत हैं, वह अवश्य होगा। यह बोध विषरूपी चिंता का शमन और दु:ख के भ्रम का निवारण करता हैं। मनुष्य इस बोधरूपी औषधि सेवन क्यों नहीं करता हैं ?
441.	यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत् । नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले ॥	जो कार्य नहीं होने लायक है, वह नहीं हो सकता है, और जो होने लायक है, वह सर्वदा हो ही सकता है । जैसे गाड़ी जल में नहीं चल सकती है और भूमि पर नाव नहीं चल सकती है । असम्भव कार्य के लिए प्रयत्न करना मूर्खता है ॥
442.	यदा न कुरूते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम्। समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः॥	जो मनुष्य किसी भी जीव के प्रति अमंगल भावना (दुर्भावना) नहीं रखता, जो मनुष्य सभी की ओर सम्यक् दृष्टी से देखता है, ऐसे मनुष्य को सब ओर सुख ही सुख है।
443.	यदाचरित कल्याणि ! शुभं वा यदि वाऽशुभम् । तदेव लभते भद्रे! कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥ Valmiki Ramayan	मनुष्य जैसा भी अच्छा या बुरा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है । कर्त्ता को अपने कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ।

444.	**यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना । यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन् नु किम् ॥**	यदि इस नाशवान और गंदगी के वाहन शरीर की बलि देकर स्थायी प्रसिद्धि प्राप्त की जा सकती है, तो और क्या नहीं पाया जा सकता?
445.	**यदृच्छ्याऽप्युपनतं सकृतसज्जनसंङ्गतम् । भवत्यजरमत्यन्तं नाभ्यासक्रममीक्षते ॥**	सज्जन मनुष्य का साथ, यदि अकस्मात संयोग से भी कभी प्राप्त हो जाता है, तो वह आजन्म मित्रता के रूप में अमर हो जाता है । वह पुनर्मिलन या आवागमन की अपेक्षा नहीं रखता है ।
446.	**यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम् । निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥**	दुःख से पीड़ित होने के पश्चात सुख अधिक भव्य होता है। पेड़ की छाया सूर्य की गर्मी से तप रहे व्यक्ति के लिए अधिक आरामदायक होती है।
447.	**यद्यत्संदृश्यते लोके सर्वं तत्कर्मसम्भवम्। सर्वां कर्मांनुसारेण जन्तुर्भोगान्भुनक्ति वै।।**	लोगों के बीच जो सुख या दुःख देखा जाता है कर्म से पैदा होता है। सभी प्राणी अपने पिछले कर्मों के अनुसार आनंद लेते हैं या पीड़ित होते हैं।
448.	**यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत् तेन योजयेत् । अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीतिर्भविष्यति ॥ भक्ष्यभक्षयोः प्रीतिर्विपत्तेः कारणं मतम् ।**	पण्डित को चाहिये कि जिसके साथ मेल (मित्रता) हो सकता है, उसके ही साथ मेल करे । परन्तु मैं तो आपका अन्न (भक्ष्य) हूँ और आप मेरे भक्षक हैं । भला हमारी तुमारी मित्रता कैसे हो सकती है?
449.	**यन्नवे भाजने लग्नः,संस्कारो नान्यथा भवेत। कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।**	जिससे कच्ची मिट्टी के घड़े में किये जाने वाले कलात्मक संस्कारों को पकाकर कभी मिटाया नहीं जा सकता, इसीलिए मैं कथाओं के बहाने मृदु बुद्धि के बच्चों को नैतिकता की बातें सुनाता हूँ।

450.	**यस्तु संचरते देशान् यस्तु सेवेत पण्डितान्। तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि।।**	जो व्यक्ति भिन्न-भिन्न देशों में यात्रा करता है और विद्वानों से सम्बन्ध रखता है। उस की बुध्दि उसी तरह होती है जैसे तेल की बूंद पूरे पानी में फैलती है।
451.	**यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म । तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥**	कहाँ से, क्या, किसके द्वारा, कितना समय, कब, कहाँ, और अच्छा या बुरा कितना उचित है, वहाँ से, कि, द्वारा वह, इतना समय, फिर, वहाँ, और इसी तरह, यह आता है। भाग्य की अपनी इच्छा होती है।
452.	**यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः। न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥**	ऐसा देश जहाँ पर कोई सम्मान नहीं हो, जीने के लिए कोई आजीविका नहीं मिले, कोई अपना भाई और बन्धु नहीं रहता हो, जहाँ पर विद्या ग्रहण करने की संभवना नहीं हो, ऐसे स्थान पर रहना नहीं चाहिए।
453.	**यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान्पूज्यते नरः। धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति।।**	यदि किसी वंश में जन्म लेने वाला व्यक्ति सदाचारी होता है तो उसका समाज में सम्मान होता है। जैसे गुणवत्ता वाले बांस से बने धनुष से क्या उपयोग किया जा सकता है, अर्थात कोई नहीं।
454.	**यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः। समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ।।**	जिसके कर्म को शर्दी, गर्मी, भय, भावुकता, समपन्नता अथवा विपन्नता बाधा नहीं डालता है, उसे ही पंडित कहा गया है।
455.	**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यांविहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥**	जिस प्रकार से अन्धे व्यक्ति के लिए दर्पण कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार से विवेकहीन व्यक्ति के लिए शास्त्र भी कुछ नहीं कर सकते।

456.	**यस्य मित्रेण सम्भाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः । यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान् ॥**	अगर व्यक्ति अपने दोस्त के साथ मीठे संबंध रखने वाले के साथ एक सार्थक संवाद और संचार करता है, तो उसके जैसा कोई भी धर्मात्मा नहीं है।
457.	**यस्य यस्य यदा दुःस्थः संतं यत्नेन पूजयेत। ब्राह्मण एवां वरो दत्तः पूजिता पूजयिप्यथ॥ [याज्ञ वल्क्य स्मृति]**	प्रजापति ब्रह्मा जी ने विधान किया है कि जिन ग्रहों की जातक पूजा-अराधना करते हैं, वे उनके सहायक हों, उनका दुष्प्रभाव पर न पड़े।
458.	**यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमान् लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः**	जिसके पास धन है, उसीके सब लोग मित्र हैं, उसी के भाह बन्धु है, वह श्रेष्ठ पुरुष है और वही सच्चा पण्डित है ॥
459.	**या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या या न जीर्यति जीर्यतः। योअसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥**	यह तृष्णा एक ऐसा गंभीर रोग (दुष्टता) है जो जीर्ण होने से, मृत्यु तक जीर्ण नहीं होती। जो के कारण दुख दे रहा है, उसे छोड़ो और सुख की प्राप्ति करो
460.	**यानि कानी च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च। पश्य मूषिकमित्रेण कपोताः मुक्तबन्धनाः।।**	छोटा हो या बड़ा, कमजोर हो या मजबूत, ज्यादा से ज्यादा दोस्त बनाने चाहिए। क्योंकि मुझे नहीं पता कि कौन किस समय किस तरह का काम करेगा।
461.	**यावद्बध्दो मरुद देहे यावच्चित्तं निराकुलम्। यावद्दृष्टिभ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः।।**	जब तक शरीर में सांस रोक दी जाती है तब तक मन अबाधित रहता है और जब तक ध्यान दोनों भौहों के बीच लगा है तब तक मृत्यु से कोई भय नहीं है।

462.	**यावद्वित्तोपार्जनसक्तः तावन्निजपरिवारो रक्तः। पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥**	जब तक व्यक्ति धनोपार्जन में समर्थ है, तब तक परिवार में सभी उसके प्रति स्नेह प्रदर्शित करते हैं परन्तु अशक्त हो जाने पर उसे सामान्य बातचीत में भी नहीं पूछा जाता है ।
463.	**ये केचिद् दुःखिता लोके सर्वे ते स्वसुखेच्छया। ये केचित् सुखिता लोके सर्वे तेऽन्यसुखेच्छया॥**	इस संसार में जो कोई भी दुखी हैं, वे अपने सुख की इच्छा से ही दुखी हैं और इस संसार में जो कोई भी सुखी हैं वे दूसरों के सुख की इच्छा से ही सुखी हैं।
464.	**येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ अथर्ववेद ३**	जिस प्रेम से देवगण एक-दूसरेसे पृथक् नहीं होते और न आपसमें द्वेष करते हैं, उसी ज्ञानको तुम्हारे परिवारमें स्थापित करता हूँ। सब पुरुषोंमें परस्पर मेल हो ॥
465.	**येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः । ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।**	जिस मनुष्य विद्या अध्ययन नहीं किया, न ही उसने व्रत तप किया, न किसी भी प्राकार का ज्ञान है, न शील न गुण और न धर्म है। ऐसे मनुष्य इस धरती पर भार होते हैं। मनुष्य रूप में होते हुए भी पशु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।
466.	**यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।**	जो व्यक्ति निश्चित वस्तु का त्याग कर अनिश्चित वस्तु के पीछे भागता है,उसकी निश्चित वस्तु नष्ट हो जाती है और अनिश्चित वस्तु का नाश हो जाता है।
467.	**यो यस्य चित्ते वसति न सदूरे कदाचन। खे सूर्य कमलं भूमौ दृष्ट्वेदं स्फुटति प्रियाः॥[गर्गसंहिता]**	जो जिसका मन में रहता है, वह कभी दूर नहीं होता। आकाश में सूर्य को कमल की तरह देखकर, यह प्रियतम प्रकट होता है।

468.	**योऽस्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् । एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥**	एक प्राणी जब दूसरे प्राणी का मांस खाता है, तो उस समय उन दोनों का भेद देखिये। खानेवाले को तो क्षणभर का आनन्द मिलता है, परन्तु दूसरा (भक्ष्य प्राणी) सर्वदा के लिये इस संसार से चला जाता है
469.	**योऽधिकाद् योजनशतात् पश्यतीहामिषं खगः । स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ॥**	वह पक्षी जो अपने शिकार को सौ योजन दूर देखता है, जब समय प्रतिकूल होता है, तो वह जालों को देख नहीं पाता जो उसे फंसाने के लिए बेहद नजदीक बिछाए गए होते हैं।
470.	**यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमअविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।**	यौवन, भौतिक धन, स्वामित्व, अविवेक, चारों से हर एक दुर्भाग्य का कारण है, जहां चारों एक साथ हैं, वहां दुर्भाग्य ही होगा।
471.	**रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः। तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥**	यह मानव -शरीर रथ है ,आत्मा (बुद्धि) इसका सारथी है ,इंद्रियाँ इसके घोड़े हैं। जो व्यक्ति सावधानी ,चतुराई और बुद्धिमानी से इनको वश में रखता है वह श्रेष्ठ रथवान की भांति संसार में सुखपूर्वक यात्रा करता है।
472.	**रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः निरालंबो मार्गश्चरणविकलो सारथिरपि।रविर्यात्यंतं प्रतिदिनम पारस्य नभसः क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥**	सात घोड़ों के रथ का एक ही चक्र, साँप की लगाम, निरालंब मार्ग, अपंग सारथि तथापि सूरज रोज अपार आकाश के अंत की ओर जाता है, महान पुरूषों के लिए क्रिया की सफलता आंतरिक सत्व पर आधारित है बाह्य साधनों पर नहीं ।
473.	**रमन्ताँ पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्। विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।**	पुण्य की कमाई मेरे घर की शोभा बढाये, पाप की कमाई को मैने नष्ट कर दिया है।इस ग्राम में सब नीरोग और हृष्ट-पुष्ट हो।

474.	रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता । क्रोधो निःसत्यता दयूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥	गुप्त बातों को प्रगट कर देना, माँगना, निष्ठुरता, चित्त की अस्थिरता, क्रोध, झूठ बोलना, जुआ खेलना ये सब मित्र के दोष हैं ॥
475.	राजा धर्ममृते द्विजः पवमृते विद्यामृते योगिनः कान्ता सत्त्वमृते हयो गतिमृते भूषा च शोभामृते। योद्धा शूरमृते तपो व्रतमृते गीतं च पद्यान्यते भ्राता स्नेहमृते नरो हरिमृते लोके न भाति क्वचित्॥	धर्म बिना राजा, पवित्रताके बिना द्विज, ब्रह्मविद्याके बिना योगी, सतीत्वके बिना स्त्री, चाल बिना घोड़ा, सुन्दरताके बिना गहना, बिना वीरके योद्धा, बिना व्रतके तप, पद्यके बिना गान, स्नेहके बिना भाई और भगवत्प्रेमके बिना मनुष्य, संसारमें कहीं सुशोभित नहीं होते
476.	राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः। एनो गच्छति कर्तारं निन्दाऽर्हो यत्र निन्द्यते॥ [मनु स्मृति 8.19]	जिस सभा में निंदनीय व्यक्ति की निंदा होती है, वहाँ राजा पापभागी नहीं होता और सभासद भी पाप से मुक्त होते हैं, किन्तु पाप करने वाले को ही पाप का फल भोगना होता है।
477.	राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः। भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्य पापं गुरस्था॥	राष्ट्र के अहित का जिम्मेदार राजा का पाप होता है, राजा के पाप का जिम्मेदार उसका पुरोहित (मन्त्रीगण) होता है, स्त्री के गलत कार्य का जिम्मेदार उसका पति होता है और शिष्य के पाप का जिम्मेदार गुरु होता है।
478.	रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः । विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा किंशुका इव ॥	रूप और यौवन से सम्पन्न तथा कुलीन परिवार में जन्म लेने पर भी विद्याहीन पुरुष पलाश के फूल के समान है जो सुन्दर तो है लेकिन सुगन्ध रहित है।
479.	रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च । आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ॥	इच्छा, दुःख, पीड़ा, संयम और विपत्तियाँ - ये मनुष्यों द्वारा किए गए पापों के रूप में वृक्ष के फल हैं।

480.	**रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो बहुश्रुताः।** **पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः।।**	सुंदर आकार के प्राणी, दया जैसे गुणों वाले, धनी, कई शास्त्रों के अभ्यासी, धार्मिक, जो इच्छा से विभिन्न सुखों का आनंद लेते हैं, ऐसे पुत्र हैं, और वे सौ साल तक जीवित रहते हैं।
481.	**रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः। केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥**	मित्र पपीहे ! सावधान मनसे जरा एक क्षण सुन तो! अरे, आकाशमें मेघ तो बहुत हैं, किन्तु सब एक-से ही नहीं हैं, कोई तो बार-बार वर्षा करके पृथिवीको गीली कर देते हैं और कोई व्यर्थ ही गरजते हैं। तू जिस-जिसको देखे उसी-उसीके सामने दीन वचन मत बोल ॥
482.	**रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।** **यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥**	रोगी, सदा परदेश रहने वाले दूसरे का अन्न खाने वाले, और दूसरे के घर में रहनेवाले-पुरुष का जीवन तो मरने के तुल्य है, और उसका मरना उसके लिए विश्राम के ही समान है। अर्थात् जीने से उसका मरना ही अच्छा है ॥
483.	**ललितान्तानि गीतानि कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।** **प्रणामान्तः सतां कोपो याचनान्तं हि गौरवम्॥**	गान का सम से, प्रेमका कटुवचन से, सज्जनों के क्रोधका प्रणाम करने से और गौरव का याचना करने से अन्त हो जाता है।
484.	**लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।** **प्राप्ते षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्॥**	पाँच वर्ष की अवस्था तक पुत्र का लाड़ करना चाहिए, दस वर्ष की अवस्था तक)उसी की भलाई के लिए) उसे ताड़ना देना चाहिए और उसके सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर उससे मित्रवत व्यहार करना चाहिए।

485.	**लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।** **पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥**	जिस स्थान पर आजीविका न मिले, लोगों में भय, और लज्जा, उदारता तथा दान देने की प्रवृत्ति न हो, ऐसी पांच जगहों को भी मनुष्य को अपने निवास के लिए नहीं चुनना चाहिए ।
486.	**लोके कुलं कुलं तावद्यावत्पूर्वसमन्वयः ।** **गुणप्रभावे विच्छिन्ने समाप्तं सकलं कुलम् ॥** **दर्पदलनम्**	संसार में कुल(परिवार) तब तक कुल(परिवार) है, जब तक पूर्वजों के साथ समानता(अनुकूलता) है । गुणों का प्रभाव नष्ट हो जाने पर सारा कुल(परिवार) समाप्त हो जाता है।
487.	**लोभमूलानि पापानि संकटानि तथैव च।** **लोभात्प्रवर्तते वैरं अतिलोभात्विनश्यति ॥**	लोभ पाप और सभी संकटों का मूल कारण है, लोभ शत्रुता में वृद्धि करता है, अधिक लोभ करने वाला विनाश को प्राप्त होता है ।
488.	**लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।** **लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्।।**	लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से भोगों आदि में लिप्त होने की प्रवृत्ति होती है। लोभ से बुद्धि का नाश होता है, इसलिए लोभ ही सभी पापों का कारण है।
489.	**लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।** **तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥**	लोभ से मनुष्य की बुद्धि चञ्चल हो जाती है, और लोभ से मनुष्य को तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में भी दुःख पाता है ॥
490.	**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।** **लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुम् अर्हति॥**	विलक्षण मानवों के मन को समझना भला किस के वश में है, वे हीरे से भी कठोर हो सकते हैं और कभी पुष्प से भी कोमल ।

491.	**वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः। करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः॥**	सदैव प्रसन्न-वदन (हँसमुख), हृदय में दया की भावना रखने वाले, अमृत के समान मीठे वचन बोलने वाले तथा परोपकार में लिप्त रहने वाले व्यक्ति भला किसके लिए वन्दनीय नहीं होगा?
492.	**वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः । स एव दीपनाषाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥**	अग्नि के वन जलाने में पवन उसका सखा(मित्र) बन जाता है, और दीपक का वही नाश करता है, दुर्बल के प्रति स्नेह किसे है? अर्थात दुर्बलता में कौन किसका मित्र होता है?
493.	**वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकुलैः सम इह परितो- षो निर्विशेषो विशेषः। स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोर्थवान् को दरिद्रः॥**	हे राजन् ! यहाँ हम पेड़ की छालों से सन्तुष्ट हैं और तू रेशमी वस्त्रों से, हमारे और तुम्हारे सन्तोष में कोई अन्तर नहीं है, संतोष दोनों का एक समान है। परन्तु जिनको धनलिप्सा अधिक है वही पुरुष दरिद्र हैं, क्योंकि मन के संतुष्ट होने पर न कोई धनी है, न कोई दरिद्र है।
494.	**वरं एको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि। एकश्चंद्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च**	सौ मूर्ख पुत्र होने की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र होना श्रेष्ठ है, अन्धकार का नाश केवल एक चन्द्रमा ही कर देता है पर तारों के समूह नहीं करते।
495.	**वरं गर्भ-स्रवो वरम् ऋतुषु नैवाभिगमनं वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता । वरं वन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसतिर्न वाविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः॥**	गर्भपात, पत्नी की संगति का परित्याग, मृत बच्चे का जन्म, कन्या का जन्म, पत्नी की गर्भ में पिण्ड के बिना या बच्चे को जन्म देने की असमर्थता,- रूपसद्गुणयुक्त होते हुए भी मूर्ख पुत्र के जन्म से श्रेष्ठ हैं।

496.	**वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं, वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्। वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि, वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥**	चुप रहना अच्छा है पर मिथ्या वचन नहीं, पुरुषका नपुंसक होना अच्छा है परन्तु परस्त्रीगमन अच्छा नहीं, प्राण परित्याग करना अच्छा है; परन्तु चुगुलोंकी बातों में रुचि अच्छा नहीं, और भिक्षा माँगकर खा लेना अच्छा है परन्तु दूसरोंके धनके उपभोगका सुख अच्छा नहीं है ।
497.	**वरं विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितोऽनलः । नोपचारपरि भ्रष्टः कृपणः प्रार्थितो जनः ॥**	दरिद्र मनुष्य अपने प्राण को अग्नि में समर्पण कर दे, वह बहुत अच्छा है। परन्तु विचारशून्य कृपण मनुष्यों से भिक्षा माँगना ठीक नहीं
498.	**वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः । वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥**	गोशाला का सूना रहना ठीक है, परन्तु दुष्ट बैल नहीं । वेश्या को पत्नी रूप से रख लेना ठीक है, परन्तु कुलीन स्त्री यदि दुश्चरित्रा नहीं । वन में रहना अच्छा है, परन्तु अविवेकी राजा के राज्य में रहना ठीक नहीं, प्राण का त्याग कर देना ठीक है, पर नीचो, की सेवा और उनका संग कभी ठीक नहीं है
499.	**वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते। व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥**	जिसके शरीरमें समस्त लोकोंको प्रिय लगनेवाले शीलका विकास होता है उसके लिये आग शीतल हो जाती है, समुद्र छोटी नदी बन जाता है, मेरु छोटा-सा शिलाखण्ड प्रतीत होता है, सिंह सामने आते ही हिरन हो जाता है, साँप मालाका काम देता है और विष अमृत बन जाता है।
500.	**वाणी रसवती यस्य,यस्य श्रमवती क्रिया। लक्ष्मीः दानवती यस्य,सफलं तस्य जीवितं।।**	जिस मनुष्य की वाणी मीठी हो, जिसका काम परिश्रम से भरा हो, जिसका धन दान करने में प्रयुक्त हो, उसका जीवन सफ़ल है।

501.	**वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां; दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसंधी यताम्। ब्रम्हास्मीति विभाव्यताम-हरहर्गर्वः परित्यज्यताम्, देहेऽहंमति रुझ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥**	वाक्यों के अर्थ पर विचार करें, श्रुति के प्रधान पक्ष का अनुसरण करें, कुतर्कों से दूर रहें, श्रुति पक्ष के तर्कों का विश्लेषण करें, मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा विचार करते हुए मैं रुपी अभिमान का त्याग करें, मैं शरीर हूँ, इस भाव का त्याग करें, बुद्धिमानों से वाद-विवाद न करें।
502.	**विकृतिं नैव गच्छन्ति संगदोषेण साधवः। आवेष्टितं महासर्पैश्चनदनं न विषायते॥**	जिस प्रकार से चन्द के वृक्ष से विषधर के लिपटे रहने पर भी वह विषैला नहीं होता उसी प्रकार से संगदोष (कुसंगति) होने पर भी साधुजनों के गुणों में विकृति नहीं आती।
503.	**विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः । परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥**	विदेश में विद्या धन, संकट में मति धन, परलोक में धर्म धन होता है । पर, शील तो सब जगह धन है ।
504.	**विद्या नाम नरस्य कीर्तिर्तुला भाग्यक्षये चाश्रयो। धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा॥ सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणम्। तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु॥**	विद्या मनुष्य की अनुपम कीर्ति है, भाग्य का नाश होने पर वह आश्रय देती है, विद्या कामधेनु है, विरह में रति समान है, विद्या ही तीसरा नेत्र है, सत्कार का मंदिर है, कुल की महिमा है, बिना रत्न का आभूषण है; इस लिए अन्य सब विषयों को छोडकर विद्या का अधिकारी बन!
505.	**विद्या विवादाय धनं मदाय , शक्तिः परेषां परिपीडनाय। खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।**	दुष्टों के लिए विद्या विवाद के लिए, धन घमंड करने के लिए ओर शक्ति दूसरो को परेशान करने के लिए होती हैं इसके विपरित साधुओं के लिए विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरो की रक्षा करने के लिए होती हैं।

506.	**विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः। विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः**	विद्या मनुष्यका एक विशेष सौन्दर्य है, छिपा हुआ सुरक्षित धन है, विद्या, भोग, यश और सुखको देनेवाली है, विद्या गुरुओंकी भी गुरु है, वह परदेशमें जानेपर स्वजनके समान सहायता करनेवाली है। राजाओंमें विद्याका ही सम्मान होता है, धनका नहीं, विद्या ही सबसे बड़ी देवता है, विद्याके बिना मनुष्य पशुके समान है॥
507.	**विद्या मित्रं प्रवासेषु,भार्या मित्रं गृहेषु च। व्याधितस्यौषधं मित्रं, धर्मो मित्रं मृतस्य च।।**	विदेश में ज्ञान, घर में अच्छे स्वभाव और गुणस्वरूप पत्नी, औषध रोगी का तथा धर्म मृतक का सबसे बड़ा मित्र होता है।
508.	**विद्या शस्त्रं च शास्त्रं च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये । आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा॥**	विद्या दो प्रकार की होती है,एक शस्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या । ये दोनों ही विद्याएँ मनुष्य को प्रतिष्ठा दिलाती हैं। वृद्धावस्था में शस्त्रविद्या उपहास का कारण बनती है, शास्त्रविद्या सदा सम्मान का
509.	**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभ्य सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाऽमृतमश्नुते।।**	जो दोनों को जानता है, भौतिक विज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक विज्ञान भी, पूर्व से मृत्यु का भय अर्थात् उचित शारीरिक और मानसिक प्रयासों से और उतरार्द्ध अर्थात् मन और आत्मा की पवित्रता से मुक्ति प्राप्त करता है।
510.	**विद्यातीर्थे जगति विबुधाः साधवः सत्यतीर्थे, गङ्गातीर्थे मलिनमनसो योगिनो ध्यानतीर्थे । धारातीर्थे धरणिपतयो दानतीर्थे धनाढ्या , लज्जातीर्थे कुलयुवतयः पातकं क्षालयन्ते॥**	संसार में बुद्धिमान् जन विद्यारूपी तीर्थ में, साधु सत्यरूपी तीर्थ में , मलिन मनवाले गङ्गा तीर्थमें, योगिजन ध्यान तीर्थ में, राजा लोग पृथ्वी तीर्थ में, धनी जन दान तीर्थमें और कुल-स्त्रियाँ लज्जा तीर्थ में अपने पापों को धोती हैं ।।

511.	**विद्याविनयोपेतो हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य। कांचनमणिसंयोगो नो जनयति कस्य लोचनानन्दम्**	विद्यावान और विनयी पुरुष किस मनुष्य के चित्त को नहीं हरते? सुवर्ण और मणि का संयोग किसकी आँखों को सुख नहि देता?
512.	**विद्वत्वं च नृपत्वं च न एव तुल्ये कदाचन् । स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥**	विद्वता और राज्य अतुलनीय हैं, राजा को तो अपने राज्य में ही सम्मान मिलता है पर विद्वान का सर्वत्र सम्मान होता है|
513.	**विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतं ज्ञानम्। ज्ञानस्य फलं विरतिः विरतिफलं चाश्रवनिरोधः॥**	विनय का फल सेवा है, गुरु सेवा का फल ज्ञान है, ज्ञान का फल निक्ति (स्थायित्व) है और विरति का फल बंधनमुक्ति तथा मोक्ष है।
514.	**विना वर्तनम् एवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम् । तन् मे प्राण-व्ययेनापि जीवयैतान् ममाश्रितान् ॥**	बिना आचार के ये मेरे समीप को नहीं छोड़ते। इसलिए, मेरे प्राणों की बलिदान से भी इनमे आस्रितों को जीवित रखो।
515.	**विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्ध मिदं हि महात्मनाम् ॥**	संकट में साहस, समृद्धि में धैर्य, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में वीरता, प्रसिद्धि पाने की तत्परता, पवित्र ग्रंथों की ओर ध्यान- ये सभी गुण महान व्यक्तियों के लिए स्वाभाविक हैं।
516.	**विप्रयोर्विप्रवह्नयोश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः। अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च॥**	दो ब्राह्मणोंके, ब्राह्मण और अग्निके, पति-पत्नीके, स्वामी तथा भृत्यके एवं हल और बैलके बीचसे होकर नहीं जाना चाहिये ॥
517.	**विरला जानन्ति गुणान् विरलाः कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम्। विरलाः परकार्यरताः परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः॥**	कोई कोई ही दूसरों के गुणों को जानते हैं, कोई कोई ही गरीबों से स्नेह रखते हैं, कोई कोई दूसरों की सहायता करते हैं और कोई कोई ही दूसरों के दुःख से दुखी होते हैं।

518.	**विवेकः सह संपत्या विनयो विद्यया सह। प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिन्हमेतन्महात्मनाम्॥**	संपत्ति के साथ विवेक, विद्या के साथ विनय और शक्ति के साथ दूसरों की सुरक्षा, ये महापुरुषों के लक्षण हैं।
519.	**विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। अमित्रादपि सद्वृत्तं अमेध्यादपि कांचनम्॥**	विष से भी मिले तो अमृत को स्वीकार करना चाहिए, छोटे बच्चे से भी मिले तो सुभाषित (अच्छी सीख) को स्वीकार करना चाहिए, शत्रु से भी मिले तो अच्छे गुण को स्वीकार करना चाहिए और गंदगी से भी मिले तो सोने को स्वीकार करना चाहिए।
520.	**वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः, पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः। निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टश्रियं मन्त्रिणः, सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते कस्यास्ति को वल्लभः**	पक्षी फल न रहनेपर वृक्ष, सारस जल सूख जानेपर सरोवर का, भौरे बासी फूलको, मृग दग्ध वन को,वेश्या निर्धन पुरुषको तथा मन्त्रीगण श्रीहीन राजा का परित्याग कर देते हैं, सब लोग अपनेअपने स्वार्थवश ही प्रेम करते हैं, वास्तवमें कौन किसका प्रिय है?
521.	**वृक्षे सीदन्पक्षी शाखाखंडनान्न बिभेति। यतः सः शाखायां न स्वपक्षायोस्तु विश्वसिति॥**	एक पेड़ पर बैठा पक्षी कभी शाखा के टूटने से नहीं डरता क्योंकि उसका भरोसा शाखा पर नहीं बल्कि अपने पंखों पर है।
522.	**वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्। वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवाऽपि च॥**	समुद्र में हुई वर्षा का कोई मतलब नहीं होता, भरपेट खाकर तृप्त हुए व्यक्ति को भोजन कराने का कोई मतलब नहीं होता, धनाढ्य व्यक्ति को दान देने का कोई मतलब नहीं होता और सूर्य के प्रकाश में दिया जलाने का कोई मतलब नहीं होता।

523.	**वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते । सर्वत्रैवं विचारे च भोजनेऽप्यप्रवर्तनम् ॥**	जब विपत्ति होती है, तब ही वृद्धों के उपदेश अनुसार आचरण करना चाहिए। अन्यथा- 'जहाँ-तहाँ उनके उपदेश से ही कार्य में लगे रहो' इस सोचने से भोजन भी नहीं खाना चाहिए॥
524.	**वृश्चिकस्य विषं पृच्छे मक्षिकायाः मुखे विषम्। तक्षकस्य विषं दन्ते सर्वांगे दुर्जनस्य तत्॥**	बिच्छू का विष पीछे (उसके डंक में) होता है, मक्षिका (मक्खी) का विष उसके मुँह में होता है, तक्षक (साँप) का विष उसके दाँत में होता है किन्तु दुर्जन मनुष्य के सारे अंग विषैले होते हैं।
525.	**वेदो नित्यमधीयताम्, तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां, तेनेशस्य विधीयताम-पचितिकाम्ये मतिस्त्यज्यताम्। पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसंधीयतां, आत्मेच्छा व्यवसीयतां निज गृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥**	वेदों का नियमित अध्ययन करें, उनमें निर्देशित कर्मों का पालन करें, उस परम प्रभु के नियमों का पालन करें, व्यर्थ के कर्मों में बुद्धि को न लगायें। समग्र पापों को जला दें, संसार के सुखों में छिपे हुए दुखों को देखें, आत्म-ज्ञान के लिए प्रयत्नशील, घर की आसक्ति को शीघ्र त्याग दें।
526.	**व्यसने मित्रपरीक्षा शूरपरीक्षा रणाङ्गणे भवति। विनये भृत्यपरीक्षा दानपरीक्षाच दुर्भिक्षे॥**	खराब समय आने पर मित्र की परीक्षा होती है, युद्धस्थल में शूरवीर की परीक्षा होती है, नौकर की परीक्षा विनय से होती है और दान की परीक्षा अकाल पड़ने पर होती है।
527.	**व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगते। विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान नावसीदति।।**	शोक में, आर्थिक संकट में या प्राणों का संकट होने पर जो अपनी बुद्धि से विचार करते हुए धैर्य धारण करता है। उसे अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

528.	**व्याघ्रानां महति निद्रा सर्पानां च महद् भयम्। ब्राह्मणानाम् अनेकत्वं तस्मात् जीवन्ति जन्तवः॥**	शेरों को नींद बहुत आती है, साँपो को डर बहुत लगता है और ब्राह्मणों में एकता नहीं है, इसीलिए सभी जीव जी रहे है। यदि शेर अपनी नींद का त्याग कर दे, साँप अपना डर छोड़ कर निर्भय हो जाये और ब्राह्मण अनेकत्व छोड़ कर एक हो जाये तो इस संसार में दुष्ट जीवों का रहना मुश्किल-नामुमकिन हो जाये।
529.	**व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च। नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम्॥**	बीमार, अर्थहीन और विदेश में रहने वाले व्यक्ति के लिए, दुख और पीड़ा से जलते हुए मित्र के दर्शन औषध की तरह हैं॥ प्राय: लोक में सर्व के लिए स्नेही होते हैं। बंधु काफी होते हैं, फिर भी जिसके पास मित्र होते हैं तो उस व्यक्ति का जीवन सुखद जीवन होता है।
530.	**व्यायामात् लभते स्वास्थ्यं दीर्घायुष्यं बलं सुखं। आरोग्यं परमं भाग्यं स्वास्थ्यं सर्वार्थसाधनम्॥**	व्यायाम से स्वास्थ्य, लम्बी आयु, बल और सुख की प्राप्ति होती है। निरोगी होना परम भाग्य है और स्वास्थ्य से सभी कार्य सिद्ध होते हैं ।
531.	**व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्या पदंब ध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलात् मत्स्याः समुद्रादपि । दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥**	आकाश के एकान्त और अत्युच्च प्रदेश में विहार करने वाले पक्षी भी आपत्ति में फँस जाते हैं । चतुर लोग अथाह जल वाले समुद्र से भो मछलियों को पकड़ लेते हैं । इसलिये इस संसार में क्या अच्छा है? और क्या बुरा है? और क्या योग्य स्थान की प्राप्ति में भी लाभ है? अर्थात् कुछ नहीं । क्यों कि कालरूपी शत्रु व्यसन (विपत्ति) रूपी हाथ पसारे बैठा है, और वह मौका पाते ही दूर से भी प्राणियों को पकड़ लेता है ॥

532.	शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले। प्रवृतिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा।।	पृथ्वी पर खाने-पीने की चीजें शंकाओं से भरी हुई हैं। ऐसे में किसे स्वीकार किया जाए, किसे नहीं स्वीकार किया जाए। अगर सब कुछ रह गया तो तुम कैसे बचे रहोगे?
533.	शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले । प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ?॥	जो भी खाद्य और पीने योग्य वस्तुएं जगत में हैं, वे सभी विभिन्न प्रकार के संदेहों से प्रभावित होती हैं। हमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, और इससे जीवन यात्रा को कैसे स्थिर करें, इस पर भ्रमित होते हैं
534.	शतेषु जायते शूरः सहस्त्रेषु च पण्डितः। वक्ता दशसहस्त्रेष दाता भवति वान वा॥	सौ लोगों में एक शूर पैदा होता है, हजार लोगों में एक पण्डित पैदा होता है, दस हजार लोगों में एक वक्ता पैदा होता है और दाता कोई बिरला ही पैदा होता है।
535.	शत्रुणा न हि सन्दध्यात् सुश्लिष्टेनापि सन्धिना । सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ॥	उत्तम से उत्तम स्नेहभाव के द्वारा भी शत्रु से कभी सन्धि नहीं करना चाहिये। यदि पानी गरम होगा तो भी वह अग्नि को बुझा ही देता है ॥
536.	शरदि न वर्षति गर्जति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः। नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥ - शार्ङ्गधरपद्धतिः	शरत् काल में बादल गरजता तो है किन्तु बरसता नहीं और वर्षा ऋतु में वह गरजता नहीं, अपितु बरसता है। उसी प्रकार नीच व्यक्ति कहता तो है किन्तु करता कुछ नहीं और सज्जन कहता तो कुछ नहीं, किन्तु करता अवश्य है।
537.	शरीरस्य गुणानाश्च दूरम्अन्त्य अन्तरम् । शरीरं क्षणं विध्वंसि कल्पान्त स्थायिनो गुणाः ।। चाणक्य नीति	शरीर और गुण इन दोनों में बहुत अन्तर है । शरीर थोड़े ही दिनों का मेहमान होता है जबकि गुण प्रलय काल तक बने रहते हैं ।

538.	**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत** (सामवेद **11.5.19)**	ब्रह्मचर्य के तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। मानसिक और शारीरिक शक्ति का संचय करके के बल पर ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। शक्तिहिन मनुष्य तो किसी भी कारण से मुत्यु को प्राप्त कर जाता है।
539.	**शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम्। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः॥**	शरीर और गुण इन दोनोंमें बहुत अन्तर है, शरीर थोड़े ही दिनोंतक रहता है; परन्तु गुण प्रलयकालतक बने रहते हैं।
540.	**शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवान् इति मे मतिः ॥**	चन्द्रमा और सूर्य को ग्रहण की पीडा, अर्थात् ग्रहण लगना, हाथों और साँपों का बन्धन,पण्डितों की भी दरिद्रता, इन सब बातों को देखकर मैं तो समझता हूँ कि भाग्य ही सबसे प्रबल है ॥
541.	**शशिनीव हिमार्तानां घर्मार्तानां रवाविव । मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ ॥**	हिम (बर्फ़ जाड़ा) से पीडित प्राणी को चन्द्रमा अच्छा नहीं लगता है, धूप से पीडित मनुष्य को सूर्य अच्छा नहीं लगता है, वैसे ही जिस की सभी इन्द्रियों जीर्ण हो गयी हो ऐसा वृद्धपति युवति स्त्रियों को कभी अच्छा नहीं लगता है ॥
542.	**शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात् परं सुखम्। न तृष्णायाः परो व्याधिः न च धर्मो दयापरः।।**	शान्ति के समान कोई तप नहीं है, संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बड़ी कोई बीमारी नहीं है, दया से बढ़कर धर्म नहीं है।
543.	**शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणां तथा । ऊहापोहोऽर्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥**	शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, चिंतन, उहापोह, अर्थविज्ञान, और तत्त्वज्ञान – ये बुद्धि के गुण हैं ।

544.	**शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्। सुचिन्तितं चौषधम् आतुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥**	शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी लोग मूर्ख रह जाते हैं। वस्तुतः वही विद्वान् है जो शास्त्रों के ज्ञान को व्यवहार में लाते हैं । जिस तरह औषधि लेने से रोगी रोगमुक्त होता है, न कि औषधि का नाम लेने से।
545.	**शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः ।दाक्षिण्यञ्चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥**	शुचिता (प्रामाणिकता), त्याग (औदार्य), शौर्य, सुख-दुःख में समरस होना, दक्षता, अनुराग, और सत्यता – यह सब मित्र के गुण हैं।
546.	**शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रं। मूर्खस्य दिशाः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥**	बच्चो के बिना घर सूना सूना लगता है,यदि कोई अच्छा दोस्त नही है तो हमेशा खालीपन महसूस होता है , मूर्ख के लिए तो चारो दिशायें शून्य ही समझो लेकिन दरिद्र व्यक्ति के लिए सारी दुनिया शून्य है।
547.	**शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिम न गजे गजे। साधवो नहि सर्वत्र,चंदन न वने वने।।**	प्रत्येक पर्वत पर अनमोल रत्न नहीं होते, प्रत्येक हाथी के मस्तक में मोती नहीं होता। सज्जन लोग सब जगह नहीं होते और प्रत्येक वन में चंदन नही पाया जाता।
548.	**शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च । दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥**	हर दिन दुःख महसूस करने के हजारों कारण होते हैं, चिंता करने के सैकड़ों कारण होते हैं। इस तरह की बातें सिर्फ बेवकूफों को परेशान करती हैं; ज्ञानी लोगों को नहीं।
549.	**शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ।। यत्र जामयः शोचन्ति तत् कुलम् आशु विनश्यति, यत्र तु एताः न शोचन्ति तत् हि सर्वदा वर्धते ।**	जिस कुल में पारिवारिक स्त्रियां (पुत्रियों, बधुओं, नवविवाहिताओं) दुर्व्यवहार के कारण शोक-संतप्त रहती हैं उस कुल का शीघ्र ही विनाश हो जाता है, इसके विपरीत जहां ऐसा नहीं होता है और स्त्रियां प्रसन्नचित्त रहती हैं, वह कुल प्रगति करता है ।

550.	शोच्यत्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयः च साधुभिः। यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यमुपागतः ॥	जीवन में मनुष्य हमेशा अपनों से ही हारता है। हम दूसरे से तो लड़ सकते हैं पर अपनों का क्या करें और जब अपना ही कोई शत्रु में जाकर मिल जावे तो उसकी तो निंदा देवता भी करते हैं फिर वह चाहे विभीषण ही क्यों न हो। अतः शत्रुओं से सावधान पर अपनों से विशेष सावधान रहें।
551.	शौचानां परमं शौचं गुणानां परमो गुणः । प्रभावो महिमा धाम शीलमेकं जगत्त्रये ॥	तीनों लोकों में एक शील ही परम् पवित्र चीझ, गुणों में श्रेष्ठ गुण, महिमा का धाम और प्रभाव है ।
552.	श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नन दुष्कुलादपि॥ मनु स्मृति	उत्तम विद्या को नीच से भी ले लेना चाहिये, चाण्डाल से भी मोक्ष धर्म की शिक्षा लेनी चाहिये और नीच कुल से भी स्त्री रत्न को ले लेना चाहिये।
553.	श्री कामः शांतिकामी वा ग्रह यज्ञं समाचरेत। वृष्टयायु पुष्टि कामों वा तथा वा अभिचरंतपी॥ [याज्ञ वल्क्य स्मृति]	जो जातक काम, कामना-इच्छा पूर्ति, विपरीत ग्रहों के दुष्प्रभाव से मुक्ति चाहता है उसे ग्रहों की पूजा शान्ति करनी-करानी चाहिये।
554.	श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु । वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ॥	सुनी गई हितोपदेश संस्कृत भाषा में प्रवीणता, सभी विषयों में चातुर्य, राजनीति और व्यवहारज्ञान प्रदान करती है।
555.	श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्। श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥	सुनकर ही मनुष्य को धर्म का ज्ञान होता है, सुनकर ही वह दुर्बुद्धि का त्याग करता है । सुनकर ही उसे ज्ञान प्राप्त होता है, और सुनकर ही मोक्ष प्राप्त होता है ।

556.	**श्रोतं श्रुतनैव न तु कुण्डलेन दानेन पार्णिन तु कंकणेन। विभाति कायः करुणापराणाम् परोपकारैर्न तु चंदनेन॥**	कान की शोभा कुण्डल से नहीं बल्कि ज्ञानवर्धक वचन सुनने से है, हाथ की शोभा कंकण से नहीं बल्कि दान देने से है और काया (शरीर) चन्दन के लेप से दिव्य नहीं होता बल्कि परोपकार करने से दिव्य होता है।
557.	**श्लोकेन वा तदर्धेन पादेनकाक्षरेण वा । अबन्ध्यं दिवसं कुर्यात् ध्यानाध्ययन कर्मभिः।।**	मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन एक श्लोक, आधा श्लोक, एक पाद अथवा एक अक्षर का स्वाध्याय करे और दान-अध्ययन आदि शुभकर्मों को करता हुआ ही दिन को सफल बनाए, दिन को व्यर्थ न गँवाए।
558.	**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वान्हे चापरान्हिकम्। न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्।।**	जिस काम को कल करना है उसे आज और जो काम शाम के समय करना हो तो उसे सुबह के समय ही पूर्ण कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु कभी यह नहीं देखती कि इसका काम अभी भी बाकी है।
559.	**षड् गुणाः पुरुषेणेह त्यक्तव्या न कदाचन। सत्यं दानम् अनालस्यम् अनसूया क्षमा धृतिः॥**	इस छःगुणों को व्यक्ति को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिएः सत्य, दान, तत्परता, दूसरों में दोष न देखने की प्रवृत्ति, क्षमा और धैर्य।
560.	**षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता। निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।**	नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य और दीर्घ शत्रुता इन 6 दोषों को वैभव और उन्नति प्राप्त करने के लिए पुरूष को त्याग करना चाहिए।
561.	**स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।**	संसार में जन्म मरण का चक्र चलता ही रहता है। लेकिन जन्म लेना उसका सफल है। जिसके जन्म से कुल की उन्नति हो।

562.	स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति। गुणधर्मविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ॥	जिसके गुण और धर्म जीवित हैं वह वास्तवमें जी रहा है, गुण और धर्मरहित व्यक्तिका जीवन निरर्थक है॥
563.	स बन्धुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः । न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः ॥	वह पीड़ितों का मित्र है जो उन्हें विपत्तियों से बचाता है,और वह नहीं जो किसी किए गए या न किए गए काम की निंदा करने में विशेषज्ञ है
564.	स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी, दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचापि विधुरपि। विधियोगात् ग्रस्यते राहुणाऽसौ, लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।।	जो आकाश में विचरण करता है, अन्धकार को दूर करता है, एक हजार किरणें रखता है, और तारों के बीच विचरण करता है, वह प्रसिद्ध चन्द्रमा भी भाग्य के स्वामी के पास है, जो भाग्य के सिर में लिखे लेख को मिटा सकता है? कोई नहीं ।
565.	संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिः दृढाऽऽधी यतां; शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशुसंत्य-ज्यताम्। सद्विद्वानुपसृप्यतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां; ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्॥	सज्जनों का साथ करें, प्रभु में भक्ति को दृढ़ करें, शांति आदि गुणों का सेवन करें, कठोर कर्मों का परित्याग करें, सत्य को जानने वाले विद्वानों की शरण लें, उनकी चरण पादुकाओं की पूजा करें, ब्रह्मक्षर वाले ॐ के अर्थ पर विचार करें, उपनिषदों के महावाक्यों को सुनें।
566.	संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित् । समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥	जिस प्रकार नीचे की ओर बहने वाली नदी नाव में बैठे व्यक्ति को अगम्य समुद्र में ले जाती है, उसी प्रकार निम्न जाति में पारित ज्ञान भी उस व्यक्ति को राजा से मिलवाता है और राजा के मिलने के बाद उसकी किस्मत खिल जाती है।

567.	संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।आशावतां श्रद्धधतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥	मीटी-मीठी बातों से तथा कपटमय सत्कारों से वश में किए गए तथा आशा रखनेवाले श्रद्धालु लोगों व याचकों को ठगना कौन बड़ी बात है?
568.	संसरतीति संसारः गच्छतीति जगत्आकर्षयतीति कृष्णः रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः इत्यादि।	इस विश्व का नाम संसार है तो इसलिये है, क्यूँकि वह चलता रहता है, परिवर्तित होता रहता है। कृष्ण राम, जिस योगी में रमते हैं , उपरोक्त उदाहरण संस्कृत भाषा की समृद्धि को प्रकट करते हैं।
569.	संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे सुभाषितरसास्वादः संगतिः सुजने जने ।।	इस संसार रूपी कटु वृक्ष के दो ही अमृत के समान फल हैं। सुभाषित का रसास्वादन और सज्जनों की संगति ।
570.	संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि । तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥	सफलता केवल उन्हीं लोगों को मिलती है जो अपने साथियों के प्रति अडिग रहते हैं, भले ही वे कमजोर हों। चावल का एक बीज तब तक एक पौधे में नहीं बदल सकता जब तक वह अपने कवक को छोड़ नहीं देता।
571.	सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद्वदन्ति कवयस्तदलीकं अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥	कविगण सज्जनों के हृदय को जो नवनीत (मक्खन) के समान बताते हैं, वह भी असत्य ही है। दूसरे के शरीर में उत्पन्न ताप (दुःख) से सज्जन तो पिघल जाते हैं, पर मक्खन नहीं पिघलता।
572.	सत्य -सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः। सत्यमूलनि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।	उस संसार में सत्य ही ईश्वर है धर्म भी सत्य के ही आश्रित है, सत्य ही सभी भाव-विभव का मूल है, सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।

573.	**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् , न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्** **प्रियं च नानृतम् ब्रूयात् , एष धर्मः सनातनः ॥**	सत्य बोलना, प्रिय बोलना चाहिये, सत्य किन्तु अप्रिय नहीं बोलना चाहिये । प्रिय किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये, यही सनातन धर्म है
574.	**सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।** **शांतिःपत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम् बान्धवाः॥**	सत्य ही हमारी माता, ज्ञान ही पिता, धर्म ही हमारा भाई, दया ही मित्र, शांति ही हमारी पत्नी, क्षमा ही पुत्र है। और ये छः ही सच्चे हितैषी और बांधव भी हैं।
575.	**सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।** **शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः।।**	स्तय, विनय, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और वाक्पटुता ये दस लक्षण स्वर्ग के कारण हैं।
576.	**सत्यमेव परं मित्रं स्वीकृते सति मानवे ।** **सत्यमेव परं शत्रुः धिक्कृते सति मानवे ।।**	यदि हम सत्य को स्वीकार करते है तो सत्य हमारा सबसे श्रेष्ठ मित्र बन जाता है। लेकिन अगर हम सत्य का स्वीकार न करके धिक्कारते है, तो जीवन में आगे चलकर वही सत्य हमारे लिए शत्रु बन जाता है।
577.	**सत्यमेवेश्वरो लोके सत्यं पद्माश्रिता सदा।** **सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।** **महर्षि वाल्मीकि रामायण**	सत्य से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है, सत्य से ही लक्ष्मी-धन धान्य मिलता है, सत्य ही सभी सुखों का मूल है, सत्य से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है, जिसका आश्रय लिया जाए।
578.	**सत्यसंकल्पतो विष्णु-र्नान्यथा तु करिष्यति।** **आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत्॥**	सत्य संकल्प श्रीविष्णु निश्चय ही कुछ गलत नहीं करेंगे, अतः निरंतर उनकी आज्ञा का पालन ही कर्त्तव्य है, उनके विपरीत कुछ करना उनसे द्रोह करना होगा।

579.	**सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्। यद्भूतहितमत्यन्तं एतत् सत्यं मतं मम्।।**	वैसे तो सत्य वचन बोलना ही श्रेयस्कर है, परन्तु वही सत्य बोलना चाहिए जिससे सभी लोगों को लाभ हो। मेरे अर्थात् श्लोककार नारद के मत में जो सबका कल्याण करता है वही सत्य है।
580.	**सत्यानुसारिणी लक्ष्मीः कीर्तिस्त्यागानुसारिणी। अभ्याससारिणी विद्या बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥**	लक्ष्मी सत्य का अनुसरण करती हैं, कीर्ति त्याग का अनुसरण करती है, विद्या अभ्यास का अनुसरण करती है और बुद्धि कर्म का अनुसरण करती है।
581.	**सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः। सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।**	पृथ्वी सत्य के द्वारा धारण की जाती है। सत्य से सूर्य तपता है और सत्य से वायु चलती है। सब कुछ सत्य में निहित है।
582.	**सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते । मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।।**	सत्य से धर्म की रक्षा होती है। अभ्यास से विद्या की रक्षा होती है। श्रृंगार से रूप की रक्षा होती है।अच्छे आचरण से कुल, परिवार की रक्षा होती है।
583.	**सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानैर्विवर्धते । क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभैर्विनश्यति ॥ महासुभाषितसंग्रह**	धर्म सत्य से उत्पन्न होता है। दया और दानशीलता के माध्यम से यह बढ़ता है। क्षमाशीलता की भावना से यह स्थापित होता है। क्रोध और लालच के माध्यम से यह नष्ट हो जाता है। .
584.	**सत्सङ्गः केशवे भक्तिर्गङ्गाम्भसि निमज्जनम्। असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत्॥**	इस असार संसारमें साधु-सङ्गति, ईश्वर- भक्ति और गङ्गा-स्नान-इन तीनों को ही सार समझना चाहिये ॥

585.	**सदयं हृदयं यस्य भाषितं सत्यभूषितम् ।** **कायं परहितं यस्य कलिस्तस्य करोति किम् ॥**	जिसके हृदय में दया है, जिसकी वाणी में सत्य है, जिसके कार्य भी दूसरो के हित के लिए है, उसका काल (मृत्यु) भी क्या करेगा अर्थात् ऐसे व्यक्ति को मृत्यु का भी भय नही होता।
586.	**सदा प्रसन्नं मुखमिष्टवाणी सुशीलता च स्वजनेषु सख्यम्। सतां प्रसङ्गः कुलहीनहानं चिह्नानि देहे त्रिदिवस्थितानाम्॥**	सदा प्रसन्नमुख रहना, प्रिय बोलना, सुशीलता, आत्मीय जनोंमें प्रेम, सज्जनोंका सङ्ग और नीचोंकी उपेक्षा--ये स्वर्गमें रहनेवालोंके लक्षण हैं ॥
587.	**सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।** **सद्भिर्विवादं मैत्री च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्।।**	सज्जनों के साथ बैठना चाहिए। सज्जनों के संग में रहना चाहिए। सज्जनों से विवाद, वाद-विवाद और मित्रता करनी चाहिए। दुष्टों के साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए।
588.	**सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ अथर्ववेद ३**	समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बनाता हूँ, जिससे आप पारस्परिक प्रेमसे समान भावोंके साथ एक अग्रणीका अनुसरण करें। देव जिस प्रकार समान – चित्तसे अमृतकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सायं और प्रातः आप सबकी उत्तम समिति हो ॥
589.	**सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।** **यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।** **यस्मिन् एव कुले नित्यं भार्यया भर्ता सन्तुष्टः,** **तथा एव च भर्त्रा भार्या, तत्र वै कल्याणं ध्रुवम् ।** **मनुस्मृति 3**	जिस कुल में प्रतिदिन ही पत्नी द्वारा पति संतुष्ट रखा जाता है और उसी प्रकार पति भी पत्नी को संतुष्ट रखता है, उस कुल का भला सुनिश्चित है । ऐसे परिवार की प्रगति अवश्यंभावी है ।

590.	**सन्तोषः परमं सौख्यं सन्तोषः परममृतम् । सन्तोषः परमं पथ्यं सन्तोषः परमं हितम् ॥ सन्तोषः परमो लाभः सत्सङ्गः परमा गतिः । विचारः परमं ज्ञानं शमो हि परमं सुखम् ॥**	सतोष, यह परम् सौख्य, परम् अमृत, परम् पथ्य और परम् हितकारक है । संतोष परम् बल है, सत्संग परम् गति है, विचार परम् ज्ञान है, और शम परम् सुख है ।
591.	**सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने। त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः॥**	अपनी स्त्री, भोजन और धन-इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये। पढ़ना, जप और दान-इन तीनोंमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये॥
592.	**सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् । कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥**	सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त एवं शान्त चित्तवालों को जो सुख है, वह सुख धन के लोभ से इधर-उधर दौड़ने वाला को कहाँ हो सकता है?
593.	**सन्दिग्धे परलोकेऽपि, कर्तव्यः पुण्यसञ्चयः। नास्ति चेन्नास्ति नो हानिः, अस्ति चेन्नास्तिको हतः॥**	परलोक में संशय हो तो भी पुण्य का सञ्चय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो कोई नुकसान नहीं है। परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जाएगा।
594.	**सप्तैतानि न पूर्यन्ते पूर्यमाणान्यनेकशः। स्वामी पयोधिरुदरं कृपणोऽग्निर्यमो गृहम्॥**	ये सात कभी पूरे नहीं होते और पूरे करने पर बढकर अनेक हो जाते हैं: मालिक, समुद्र, पेट, कंजूस, अग्नि, मृत्यु और घर।
595.	**समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः। का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत्॥**	प्रभु को समर्पण से पहले क्या मैं सदा अच्छी स्थिति में था? फिर अपनी अधमता का क्या विचार करना, जिससे पश्चात्ताप हो।
596.	**समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ अथर्ववेद ३**	अन्न और जलकी सामग्री समान हो।एक ही बन्धनसे सबको युक्त करता हूँ ।अतः उसी प्रकार साथ मिलकर अग्निकी परिचर्या करो, जिस प्रकार रथकी नाभिके चारों ओर अरे लगे रहते हैं ॥

597.	समाश्वासनवागेका न दैवं परमार्थतः। मूर्खाणां सम्प्रदायेऽस्य परिपूजनम्।।	यह सिर्फ यह आश्वासन देने के लिए एक बयान है कि भाग्य ही सब कुछ है, वास्तव में भाग्य जैसी कोई चीज नहीं है। मूर्खों के समाज में भाग्य की ही पूजा होती है।
598.	समुद्रावरणा भूमिः प्राकारावरणं गृहम्। नरेन्द्रावरणो देशश्चरित्रावरणाः स्त्रियः॥	पृथ्वीकी रक्षा समुद्रसे, गृहकी रक्षा चहारदिवारीसे, देशकी रक्षा राजासे और स्त्रीकी रक्षा उत्तम चरित्रसे है ॥
599.	सम्पत्सु महतां चित्तम् भवेत्युत्पलकोमलम् । आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्॥	ऐश्वर्य मे महापुरुषों का हृदय (दुखी लोगों के प्रति) कमल के फूल के समान कोमल हो जाता है और वही संकटों के समक्ष महापर्वतों की शिलाओं जैसा कठिन हो जाता है।
600.	सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्। तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलं।।	जो न तो धन में सुख लेता है और न विपत्ति में दुःख और जो युद्ध में भी धैर्य का त्याग नहीं करता है। त्रिभुवन के तिलक जैसा पुत्र शायद ही कोई माँ देती हो।
601.	सम्पूर्ण कुंभो न करोति शब्दं अर्धोघटो घोषमुपैति नूनम्। विद्वान कुलीनो न करोति गर्वं गुणैर्विहीना बहु जल्पयंति॥	जिस प्रकार से आधा भरा हुआ घड़ा अधिक आवाज करता है पर पूरा भरा हुआ घड़ा जरा भी नहीं, उसी प्रकार से विद्वान, विद्वता पर घमण्ड नहीं करते जबकि गुणविहीन लोग स्वयं को गुणी सिद्ध करने में लगे रहते हैं।
602.	सर्पदुर्जनयोर्मध्ये वरं सर्पो न दुर्जनः। सर्पो दशती कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे॥	यदि साँप और दुष्ट की तुलना करें तो) साँप दुष्ट से अच्छा है क्योंकि साँप कभी-कभार ही डँसता है पर दुष्ट पग-पग पर (प्रत्येक समय) डँसता है।

603.	**सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः। सर्पः शाम्यति मन्त्रैश्च दुर्जनः केन शाम्यति॥**	साँप भी क्रूर होता है और दुष्ट भी क्रूर होता है किन्तु दुष्ट साँप से अधिक क्रूर होता है क्योंकि साँप के विष का तो मन्त्र से शमन हो सकता है किन्तु दुष्ट के विष का शमन किसी प्रकार से नहीं हो सकता।
604.	**सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते शुष्कैस्तृणैर्वन गजा बलिनो भवन्ति । कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमय न्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्॥**	सर्प पानी पीते हैं, लेकिन दुर्बल शुष्क घासों से वन के जीव बलशाली बनते हैं। मुनीषियों के फल समय को ले जाते हैं, संतोष ही पुरुष का सर्वोच्च निधि है।
605.	**सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।**	जो सब दूसरों के वश में होता है, वह दुख है। और जो सब अपने वश में होता है, वह सुख है। संक्षेप में सुख एवं दुख का लक्षण है।
606.	**सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् । अहार्यत्वाद् अनर्घत्वाद् अक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥**	सब द्रव्यों में विद्यारुपी द्रव्य सर्वोत्तम है, क्योंकि अजेय, अमूल्य, अक्षय है
607.	**सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावो नेतरे गुणाः । अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥**	हर व्यक्ति के गुणों में से उसका स्वाभाविक स्वभाव ही वास्तविक और निर्णायक होता है। अन्य सभी गुण संकट की घड़ी में छिप सकते हैं या धोखा दे सकते हैं, लेकिन व्यक्ति का स्वभाव तब भी प्रकट होता है और सबसे प्रभावी रहता है।
608.	**सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये। सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।**	जो मनुष्य सब प्रकार की हिंसा से मुक्त है, जो सब कुछ सह लेता है, वह सबका आश्रय है, वह मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है।

609.	**सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् । उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥**	जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके पास सब सम्पत्ति है, जिस मनुष्य के पैर में जूता है, उसके लिये मानो सब पृथ्वी ही चर्म से अच्छा दिए है
610.	**सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ महाभारतम्**	सारे संग्रहों का अंत उनके क्षय में ही है। भौतिक उन्नतियों का अंत पतन में ही है। सारे संयोगों का अंत वियोग में ही है। इसी प्रकार संपूर्ण जीवन का अंत मृत्यु में ही होने वाला है।
611.	**सर्वोपनिषदो गावः दोग्धाः गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीः भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥**	समस्त उपनिषद गाय हैं, श्री कृष्ण उन गायों के रखवाले हैं, पार्थ (अर्जुन) बछड़ा है जो उनके दूध का पान करता है और गीतामृत ही उनका दूध है। (अर्थात् समस्त उपनिषदों का सार गीता ही है।)
612.	**सहसा विद्धीत न क्रियतामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणंशगुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।**	अचानक से कोई भी कार्य नहीं करते, बिना सोचे समझे किया गया कार्य आपत्ति का कारण बन जाता है। जो धन गुणों से मुग्ध होता है, वह सोच-समझकर काम करने वाले को ही माला पहनाता है।
613.	**सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्ववेद ३**	आप सबके मध्य में विद्वेष को हटाकर मैं सहृदयता, संमनस्कता का प्रचार करता हूँ। जिस प्रकार गौ अपने बछड़े से प्रेम करती है, उसी प्रकार आप सब एक-दूसरे से प्रेम करें ॥ १ ॥
614.	**साहित्य सङ्गीतकला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥**	जो साहित्य संगीत तथा कला से विहीन है वह तो साक्षात बगैर पूंछ और सिंगो वाला जानवर ही है।खाना, पीना, डरना, सोना और अपना परिवार बढ़ाना ये काम तो पशु भी कर लेते हैं। अगर हम भी यही काम करते रहे, तो हम में और अन्य जानवरों में अंतर ही नहीं ।

615.	**साधुस्त्रीणां दयितविरहे मानिनो मानभने, सल्लोकानामपि जनरवे निग्रहे पण्डितानाम्। अन्योद्रेके कुटिलमनसां निर्गुणानां विदेशे, भृत्याभावे भवति मरणं किन्तु सम्भावितानाम्॥**	प्रियतम पति के वियोग में सती स्त्रियों का, सम्मान-भङ्ग होने पर प्रतिष्ठित पुरुषों का,लोकापवाद होने पर सत्पुरुषों का, शास्त्रार्थ में पराजय होने पर पण्डितोंका, दूसरों का उत्कर्ष देखकर कुटिल हृदय वालों का, विदेशमें गुणहीन मनुष्योंका, नौकर न रहने पर अमीर लोगों का मरण-सा हो जाता है॥
616.	**साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः। तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः॥**	साधुओंका दर्शन पावन है, क्योंकि वे तीर्थस्वरूप होते हैं, तीर्थका फल तो देरसे मिलता है परन्तु साधुसमागमका फल तत्काल प्राप्त होता है ॥
617.	**साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम् । न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ॥**	सज्जन का चित्त क्रोध दिलाये जाने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होता है । जैसे समुद्र के जल को घास कूस को अग्नि (लुकाटी) से गरम नहीं किया जा सकता है ।
618.	**सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ।।**	सिंह का बच्चा भी मदोन्मत्त हधी के गाल पर आक्रमण करता है। संसार में बलवानों का कारण उम्र नहीं बल्कि उसका पराक्रम होता है, जो पराक्रमी होता है. उसके लिए उम्र का कोई महत्त्व नहीं होता।
619.	**सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात् तस्य धूर्जटेः । जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ॥**	जिन शंकर केमस्तक पर चन्द्रमा की कला गंगाजी के फेन की रेखा के समान शोभित हो रही है, उनकी कृपा से सज्जनों के कार्यों में सफलता प्राप्त हो

620.	**सुखं शेते सत्यवक्ता सुखं शेते मितव्ययी। हितभुक् मितभुक् चैव तथैव विजितेन्द्रिय: ॥ – चरकसंहिता**	सत्य बोलनेवाला , मर्यादित खर्चा करनेवाला , हितकारक पदार्थ जरूरी प्रमाण मे खानेवाला , तथा जिसने इन्द्रियोंपर विजय पाया है , वह चैन की नींद सोता है ।
621.	**सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभतेघनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्। सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति॥**	दुःख का अनुभव करने के बाद ही सुख का आनन्द उसी प्रकार आता है जैसे कि घने अँधेरे से निकलने के बाद दीपक-प्रकाश-रोशनी अच्छी लगती है। सुख भोगने उपरान्त दारिद्र का दुःख जीवित मनुष्य को मृतक के समान कर देता है।
622.	**सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्। सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।**	सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ से, और विद्यार्थी को सुख कहाँ से, सुख की इच्छा रखने वाले को विद्या और विद्या की इच्छा रखने वाले को सुख का त्याग कर देना चाहिए।
623.	**सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाश कालेऽपि।छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य॥**	दूसरों की भलाई करने में सदैव तत्पर रहने वाले सज्जन व्यक्तियों के स्वभाव में उनके सम्मुख मृत्यु संकट उपस्थित होने पर भी कोई विकृति नहीं होती है जैसे चन्दन का वृक्ष काटे जाने के समय भी कुव्हाडी की धार को अपनी सुगन्ध से भर देता है।
624.	**सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः। सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्॥**	अच्छी प्रकार पचा हुआ अन्न, सुशिक्षित पुत्र, भली प्रकार शासनके अंदर रखी हुई स्त्री, अच्छी तरह सेवित राजा,विचारपूर्ण भाषण और समझ-बूझकर किया हुआ कर्म-इन सबमें बहुत काल बीत जानेपर भी दोष उत्पन्न नहीं होता ॥

625.	सुभिक्षं कृषके नित्यं नित्यं सुखमरोगिणः। भार्या भर्तुः प्रिया यस्य तस्य नित्योत्सवं गृहम्॥	जो कृषिकर्म करता है, उसके अन्नका अभाव नहीं रहता, जो नीरोग है वह सदा सुखी रहता है और जिस स्वामीकी स्त्री उसको प्यारी है उसके घरमें सदा आनन्द रहता है ।
626.	सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुताः । छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः ॥	यहां तक कि वे लोग जो शास्त्रों के ज्ञाता हैं, अच्छी तरह से सूचित हैं, और संदेहों को दूर करने में सक्षम हैं, भी तब कठिनाई महसूस करते हैं जब उनका निर्णय लालच से धुंधला हो जाता है।
627.	सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥	हे राजा! सदैव प्रिय भाषण करनेवाले सुलभ मिल जाते हैं, किंतु अप्रिय जो हित दायी हो ऐसा भाषण करनेवाले वक्ता एवं श्रोता, दोनों ही मिलना दुर्लभ होता है ।
628.	सुवर्णरौप्य माणिक्यवसनैरपि पुरिता । तथापि प्रार्थयन्त्येव कृषकान् भक्त तृष्ण या ॥	सोना,चांदी,माणिक्य एवं वस्त्रों से पूर्ण होने पर भी मनुष्यों को भोजन के आवश्यकतावश किसान पर निर्भर रहना पड़ता हैं ।
629.	सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम् । विपत् सन्निहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः ॥	जो लोग अपने हित चाहने वाले मित्रों का कहना नहीं सुनते हैं, उनके ऊपर विपत्ति अवश्य आती है और वे अपने शत्रुओं के आनन्द के कारण ही होते हैं ॥
630.	सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि। गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।।	तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्ति भूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हे नमस्कार है।
631.	सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति। आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे॥	सेवक का यही निश्चित धर्म है, शेष स्वामी स्वयं करेंगे। गँगा और सागर के संगम पर पूर्व में जो आज्ञा हुई थी।

632.	**सेवितव्यो महावृक्षः फ़लच्छाया समन्वितः।** **यदि देवाद फलं नास्ति,छाया केन निवार्यते।।**	एक विशाल वृक्ष की सेवा करनी चाहिए। क्योंकि वह फल और छाया से युक्त होता है। यदि किसी दुर्भाग्य से फल नहीं देता तो उसकी छाया कोई नहीं रोक सकता है।
633.	**सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्** **हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥**	जैसे दूसरे की सेवा मान को, प्रकाश अन्धकार को, वृद्धता सौन्दर्य को और भगवत्कथा पाप को हरण करती है, वैसे ही याचना (माँगना) भी मनुष्यों के सभी गुणों को हर लेती है,
634.	**स्तस्य भूषणम दानम, सत्यं कंठस्य भूषणं।** **श्रोतस्य भूषणं शास्त्रम, भूषनैः किं प्रयोजनम।।**	हाथ का आभूषण दान है, गले का आभूषण सत्य है, कान की शोभा शास्त्र सुनने से है, अन्य आभूषणों की क्या आवश्यकता है।
635.	**स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।** **विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥**	स्त्री, रत्न, विद्या, धन, पतिव्रता, अच्छे वचन, अनेक प्रकार की कारीगरी ये सब जहाँ से प्राप्त हों ले लेनी चाहिये।
636.	**स्त्रियो हि चपला नित्यं देवानामपि विश्रुतम्।** **ताश्चापि रक्षिता येषां ते नराः सुखभागिनः ॥**	स्त्रियाँ सदा चञ्चल हैं- यह बात लक्ष्मी आदिके विषय में देवताओं में भी प्रसिद्ध है । अतः जिन पुरुषों की स्त्रियां सुशील व सुरक्षित हैं, वे ही मनुष्य संसार में सुखी हैं ॥
637.	**स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते दन्ताः केशाः नखा नराः।** **इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्॥**	यदि मनुष्य के दांत, केश, नख इत्यादि अपना स्थान त्याग कर दूसरे स्थान पर चले जाएँ तो वे कदापि शोभा नहीं नहीं देंगे। इसी प्रकार से विज्ञजन के मतानुसार किसी व्यक्ति को अपना गुण, सत्कार्य इत्यादि का त्याग नहीं करना चाहिए।

638.	**स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥**	हे नारद ! व्यभिचारी स्त्रियाँ पतिव्रता तभी तक रह सकती हैं, जब तक या तो उनके लिए व्यभिचार का कोई स्थान ही नहीं हो, या समय ही न मिले, या उनके चाहने वाला कोई पुरुष ही न हो ॥
639.	**स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः । इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥**	दाँत, केश, नख, मनुष्य, ये चारों स्थानभ्रष्ट होने पर शोभते नहीं हैं । ऐसा विचारकर बुद्धिमान् मनुष्य को अपना स्थान कभी नहीं छोडना चाहिये॥
640.	**स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः । तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ॥**	क्यों कि क्यों कि सिंह, सत्पुरुष और हाथी ये तीनों तो अपना अपना स्थान छोडकर अच्छे स्थान में चले जाते हैं । परन्तु कौवा, कायर मनुष्य और मृग, ये तीनों तो अपने स्थान पर ही पड़े-पड़े मर जाते हैं
641.	**स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम् । भङ्गेऽपि हि मृणालानामनुबध्नन्ति तन्तवः ॥**	सज्जनों के साथ प्रीति टूट जाने पर भी उनका चित्त विकृत नहीं होता है, किन्तु उनका साधारण सम्बन्ध बना ही रहता है। कमल की डण्डी के बीच में से टूट जाने पर भी उनके तन्तु परस्पर में जुड़े रहते हैं ॥
642.	**स्वगृहे पूज्यते मूर्खः स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते।।**	जिस प्रकार सोने का परिक्षण घिसने, काटने, तापने और पीटने जैसे चार प्रकारों से होता है। ठीक उसी प्रकार पुरूष की परीक्षा त्याग, शील, गुण और कर्मों से होती है।
643.	**स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा। सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम्॥**	उपदेश देकर किसी के स्वभाव को बदला नहीं जा सकता, पानी को कितना भी गरम करो, कुछ समय बाद वह फिर से ठंडा हो जाता है।

644.	**स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते । अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात् पातकं महत् ॥**	बिना बोये-जोते स्वयं वन में उत्पन्न हुए साग से भी जब यह पेट भरा जा सकता है, तो इस पापी पेट के लिये इतना बड़ा पाप कौन समझदार मनुष्य करेगा? अर्थात् इस पापी पेट के लिए किसी को भी ऐसा जघन्य काम नहीं करना चाहिये।
645.	**स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे सङ्गति- गोंष्ठी पूरुषसन्निधावनियमो, वासो विदेशे तथा । संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद्वृत्तेर्निजायाः क्षतिः, पत्युर्वार्द्धकमीषितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियाः॥**	स्वतन्त्रता, पिता के घर रहना, धार्मिक स्थान पर यात्रा, मेले, विवाह उत्सव इत्यादि में लोगों से मित्रता, पुरुषों के साथ में बिना रोक टोक गप लड़ाना, किसी की रोक का न रहना, विदेश में रहना, जीविका का अभाव, व्यभिचारिणी स्त्रियों का साथ होना, पति का वृद्ध, इर्षालु होना, पति का परदेश में रहना,ये स्त्रियों के बिगड़ने के कारण हैं॥
646.	**स्वातन्त्र्यो हि मनुष्याणामधिकारो स्वभावजः । तमहं प्रार्थये नित्यं लोकमान्यवचस्त्विदम् ॥**	स्वतंत्र मानव का अधिकार है जो प्रकृति में निहित हैं। मैं उससे प्रार्थना करता हूं कि यह हमेशा दुनिया के सांसारिक शब्द हैं
647.	**स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञ तायाः । विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनम पण्डितानाम् ॥**	अपनी मूर्खता छिपाने के लिये भगवान ने मूर्खों को मौन धारण करने का अद्भुत सुरक्षा कवच दिया है, जो उनके अधीन है। विद्वानो से भरी सभा मे "मौन रहना" मूर्खो के लिये आभूषण से कम नहीं है।
648.	**हंसो शुक्लः बको शुक्लः को भेदो बकहंसयो। नीरक्षीरविवेके तु हंसो हंसः बको बकः॥**	हंस भी सफेद रंग का होता है और बगुला भी सफेद रंग का ही होता है फिर दोनों में क्या भेद (अन्तर) है? जिसमें दूध और पानी अलग कर देने का विवेक होता है वही हंस होता है और विवेकहीन बगुला बगुला ही होता है।

649.	**हर्तृ र्न गोचरं याति दत्ता भवति विस्तृता। कल्पान्तेऽपि न या नश्येत् किमन्यद्विद्यया विना॥**	जो चोरों दिखाई नहीं पड़ता, किसी को देने से जिसका विस्तार होता है, प्रलय काल में भी जिसका विनाश नहीं होता, विद्या के अतिरिक्त ऐसा अन्य कौन सा द्रव्य है?
650.	**हस्तस्य भूषणं दानं सत्यं कण्ठस्य भूषणम्। कर्णस्य भूषणं शास्त्रं भूषणैः किं प्रयोजनम्॥**	दान हाथका भूषण है, सच बोलना कण्ठका भूषण है, शास्त्र-वचन कानका भूषण है, [फिर] दूसरे भूषणोंकी क्या आवश्यकता है?
651.	**हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।**	हे पुत्र, नीच लोगों की संगति में बुद्धि दुर्बल होती है, समान व्यक्तियों के संग से मन वही रहता है, और विशेष व्यक्तियों के संग से विशेष गुण आदि की प्राप्ति होती है।